प्रबंध-प्रकाश

विस्तृत भूमिका, लगभग ४५ भिन्न-भिन्न विषयों वर्णनात्मक, आलोचनात्मक व्याख्यात्मक तथा तार्किक निबंध और लगभग ५० निबंधों के खाकों सहित लेखनकला के ज्ञान के लिए अनूठी पुस्तक

लेखक

चित्रपट, वंदनवार, बहूरानी, अमरलता भिखारिन आदि के रचयिता

श्री शम्भूदयाल सक्सेना, साहित्यरत्न,

सेठिया कालेज, बीकानेर

प्रकाशक

हिन्दी-भवन

अनारकली, लाहौर

प्रथम संस्करण] १९३५ मूल्य १।)

प्रकाशक—
श्री धर्मचन्द्र विशारद
हिन्दी भवन
लाहौर



मुद्रक—
श्री देवचन्द्र विशारद
हिन्दी भवन प्रेस
लाहौर

निवेदन

निबंध-रचना पर हिन्दी में कई पुस्तकें मौजूद हैं। उनके होते हुए भी इस पुस्तक की रचना का कारण यह है, कि यह उच्च श्रेणी के विद्यार्थियों की आवश्यकता को लक्ष्य में रखकर लिखी गई है। अब तक 'हिन्दी-भूषण' परीक्षा में निबंधों के जो विषय आचुके है उन्हीं को हमने आदर्शरूप से लिखकर विद्यार्थियों के सामने रखने का प्रयास किया है। किन्तु निबन्ध लिखते समय स्कूलों की उच्च परीक्षा, इंटरमीडिऐट, प्रभाकर तथा साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा-परीक्षा के विद्यार्थियों का भी ध्यान रक्खा गया है, इसीसे लेखों का विस्तार कुछ अधिक होगया है और विषय का विवेचन भी कुछ गहराई के साथ किया गया है। हमे आशा है कि यह पुस्तक जिनके लिए लिखी गई है, उन्हें निबन्ध-रचना का थोडा-बहुत ज्ञान करा सकेगी।

इसके लिखने में कितनी ही पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से सहायता लेनी पडी है, जिनके कर्ताओं के हम विशेषरूप से कृतज्ञ है। अन्त में श्रीयुत तारानाथ जी रावल विशारद को भी धन्यवाद देना है जिनसे हमें कई निबन्ध इस पुस्तक के लिए प्राप्त हुए हैं, यथास्थान उनका नाम दिया गया है।

—लेखक

विषय-सूची

निबन्ध-रचना

मनोभावों के प्रकाशन की प्रवृत्ति मनुष्य-मात्र में पाई जाती है। आरंभिक अवस्था में यह प्रवृत्ति इशारों और संकेतों तक ही रहती है। धीरे-धीरे इसे वाणी का आधार प्राप्त होता है, पर इसमें परिपूर्णता और प्रौढता तब तक नहीं आती जब तक लिपि का अवलंब न मिले। यों तो इशारों तथा संकेतों और बोलने तथा लिखने का प्रयोजन एक ही होता है, सब यही चाहते हैं कि हमारे मन की बात का आशय जैसे का जैसा दूसरों के द्वारा समझा जा सके। चित्र, शिल्प और संगीत आदि ललित-कलाओं में भी यही प्रवृत्ति काम कर रही है। वहाँ भी अपने मनो-भावों को दूसरों तक पहुँचाना ही इष्ट है। फिर भी सबका काम और सबका प्रभाव पृथक्-पृथक् है। इशारों और संकेतों के क्षेत्र में व्यापकता नहीं है। कोई कितने इशारे कर सकता है? कोई कितने इशारे समझ सकता है? इनकी दुनियाँ बहुत छोटी है। इनके भाव-प्रकाशन का क्षेत्र बहुत संकीर्ण है। फलत इनका प्रभाव भी उसी प्रकार सीमित है।

वार्तालाप इसका अगला और सफल क़दम है। वार्तालाप की अवस्था को प्राप्त हुआ मनुष्य मानों कुँए से निकलकर संसार में आ गया है। उसके भाव-प्रकाशन का क्षेत्र भी उसी क़दर विशाल हो गया है। तो भी लिखने और बोलने में अन्तर रहता ही है। बोलते और वक्तृता देते समय विचार का पूरा अवसर नहीं मिलता, फिर भी बोल-चाल और वक्तृता का असर पड़े बिना नहीं रहता इसका कारण यही है कि वक्ता श्रोता के सामने रहता है इसलिए अपनी वाणी के साथ-साथ इंगित, इशारों और हाव-भाव को भी काम में ला सकता है। लेखक को यह सुविधा प्राप्त नहीं होता,

पर उसे सबसे बड़ी सुविधा यह होती है कि वह विचार और चिन्तन करने के लिए स्वतन्त्र रहता है। इस सहूलियत का जहाँ वह लाभ उठाता है वहीं उसे भाषा-विन्यास के प्रति कड़ी सावधानी रखनी होती है। लेखक को तो केवल शब्दों और वाक्यों के द्वारा अपने भावों का रूप खड़ा करना पड़ता है। उसकी सफलता में उसका लेखन-कौशल ही एकमात्र सहायक होता है। कोई दूसरा पाठक के समक्ष उसकी वकालत करने को प्रस्तुत नहीं होता। इसलिए लेखक के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—(१) भाषा की शुद्धता, (२) वाक्य-रचना की व्यवस्था और (३) विचारों की स्वाभाविक शृंखला।

अभ्यास और चिन्तन से ये तीनों बातें प्राप्त हो सकती हैं। भाषा की शुद्धता और वाक्यरचना की व्यवस्था के लिए अभ्यास ही मुख्य वस्तु है। बिना अभ्यास के इनमें प्रवीणता आनी कठिन है। सुलझे हुए और क्रमबद्ध विचार गंभीर चिन्तन के फल हैं। जिसने शान्ति के साथ किसी विषय पर सोचा नहीं, उसके सब पहलुओं को उलट-पलट कर नहीं देखा, वह उस विषय से सर्वथा अपरिचित ही रहेगा। वह अपने शृंखलाबद्ध विचार प्रस्तुत न कर सकेगा। किन्तु चिन्तन का आधार हमारा ज्ञान-भण्डार है। यह जितना ही बृहत् और पूर्ण होगा, चिन्तन-कार्य उतना ही सहज हो जायगा और उतनी ही सरलता से हम अपने विचारों की माला गूँथ सकेंगे। हमारा ज्ञान-भण्डार मुख्यतया इन तीन उपादानों से भरा जाता है, (१) निरीक्षण (२) श्रवण (३) और अध्ययन।

निरीक्षण

सारी दुनियाँ हमारी आँखों के सामने है। सभी उसका अवलोकन करते हैं, पर ऐसे बहुत थोड़े हैं जो बारीकी से हरएक बात पर नज़र डालते हों। प्रत्येक वस्तु और व्यापार का सूक्ष्म निरीक्षण करनेवाले के हृदय-पटल पर उसका चित्र स्पष्ट हो जाता है। अपने अनुभव के आधार पर ही हम दूसरों को अपने [illegible] का ज्ञान कराते हैं। यदि हमारा निरीक्षण

ही पूरा नहीं है, हमें स्वयं ही उस व्यापार का स्पष्ट बोध नहीं हुआ है, तो हम दूसरे को उसका बोध क्या करायेंगे ? इसलिए ध्यानपूर्वक किया गया पूर्ण निरीक्षण परमावश्यक है।

भ्रमण

भ्रमण या पर्यटन ज्ञानार्जन का कितना बड़ा साधन है यह सब को मालूम है। स्थान-स्थान पर जाकर प्रत्येक वस्तु और व्यापार को अपनी आँखों से देखने, उनके संसर्ग में रहकर अपने ज्ञानकोष को बढ़ाने की इसमें बड़ी गुञ्जाइश है। गुरु और पुस्तकों की सहायता से हमें जो ज्ञान होता है वह अप्रत्यक्ष-ज्ञान है। पर्यटन का समस्त ज्ञान प्रत्यक्ष-ज्ञान है। इसका हमारी स्मरणेंद्रिय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस तरह प्राप्त किया हुआ ज्ञान विस्मृत नहीं हो सकता। इससे स्मरणशक्ति पर अधिक बल भी नहीं पड़ता। नित्य नवीन चीज़ों को देखने से भावों में विकास होता है और कल्पना को नवीन क्षेत्र प्राप्त होते हैं। इसलिए इसकी उपयोगिता भी स्वतःसिद्ध है।

अध्ययन

भ्रमण करने के साधनों के अभाव में अध्ययन ही ज्ञानार्जन का एक मात्र उपाय है। प्राय लोग इसी की शरण लेते हैं, क्योंकि भ्रमण बड़ा व्ययसाध्य साधन है। अध्ययन देश-काल की दूरी को सर्वथा नष्ट कर देता है पुस्तक के ज़रिये हम लाहौर में बैठे-बैठे बर्लिन और मास्को, लंदन और पेरिस के विद्वानों का संसर्ग प्राप्त कर सकते हैं। बीसवीं शताब्दी के एक प्रभात काल में वैदिक युग के वाल्मीकि और वशिष्ठ, व्यास और मनु के विचार उन्हीं के शब्दों में सुन सकते हैं। किन्तु इस साधन को आजकल बड़ी सावधानी से काम में लाना चाहिए। ज्ञान-विज्ञान के इस युग में पुस्तकों की बाढ़ आगई है उसमें से शुद्ध, सुपाठ्य और विचारों को उन्नत करने वाले सुन्दर-सुन्दर ग्रंथ ही पढ़ने चाहिए, पुस्तकों का कीड़ा बनने से कोई लाभ नहीं है।

इन सब साधनों को प्राप्त कर चुकने के उपरान्त निबंध लेखक को लेखन-कला के नियमों की भी जानकारी हासिल करनी चाहिए। कला-कुशल लेखक व्यर्थ के विस्तार से बच सकता है। वह संक्षेप में ही अपने आशय को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करके वाञ्छित प्रभाव उत्पन्न कर सकता है, जबकि लेखन-कला से अनभिज्ञ पुरुष विषय का अच्छा ज्ञान रखने पर भी अपनी बात उस खूबी से पाठकों के सामने रखने में असमर्थ रहेगा। उसके लेख में वह गठन, वह सौष्ठव और वह चुस्ती नहीं होगी। उसके लेख का कोई अंग फूला हुआ, कोई पिचका हुआ, कोई शिथिल और कोई प्राणहीन-सा नज़र आयेगा। इसवास्ते लेखन-कला के ज्ञान की प्रयोजनीयता अनिवार्य है।

प्राय यह बात देखने में आती है कि ऊपर बताए हुए समस्त साधन प्राप्त होने पर भी बहुत से लोग निबन्ध के नाम से दस-बीस लाइनें भी नहीं लिख सकते। उन्हें लेखनी उठाते हुए झिझक होती है, मन में भाव रखते हुए भी यह नहीं सूझता कि कैसे आरम्भ किया जाय? यह कठिनाई प्राय उन्हीं को होती है, जिन्हें लेखन-कला का अभ्यास नहीं है। पर कला के नियमों का ज्ञान कर लेते ही यह कठिनाई एक दम दूर हो जाय ऐसा भी नहीं है, क्योंकि निबंध लिखने का कोई एक निश्चित तरीका नहीं है। प्रत्येक लेखक अपने ही ढंग से निबंध लिखता है, और यही सर्वोत्तम उपाय है। केवल अपने आपको सँभाल लिया जाय, अपनी शक्ति में विश्वास कर लिया जाय, और विचारों को स्वाभाविक क्रम के अनुसार लिपिबद्ध कर दिया जाय। तथापि लेख में लेखक के लिए ध्यान देने के तीन स्थल होते हैं—आरम्भ, निर्वाह और समाप्ति। इन्हीं को क्रमश. प्राक्कथन, विवेचनीय विषय और उपसंहार कह सकते हैं। इन पर ध्यान दे लेने से लेख की सीमा निश्चित हो जाती है। लेखक को इधर-उधर भटकना नहीं पड़ता। अब हम निबंध के इन तीन मुख्य अंगों के संबंध में पृथक-पृथक अपने विचार प्रकट करेंगे।

प्रारम्भ

प्रारंभ में पाठक को संपूर्ण निबंध पढने के लिए प्रवृत्त करने की क्षमता होनी चाहिए। अत प्रारंभ जितना ही रोचक होगा उतना ही यह कार्य सरलता से हो सकेगा। किन्तु रोचकता के लिए विषयान्तर नहीं कर देना चाहिए। विषय की ओर अग्रसर होते हुए जो रोचकता लाई जाती है, वही लेख की उपयोगिता और शोभा दोनों को बढ़ाती है। इसलिए कभी-कभी विद्वानों के तद्विषयक उद्गार उद्धृत करके लेख का आरम्भ किया जाता है।

निर्वाह

निर्वाह लेख का मध्य भाग है और मुख्य भी है। मुख्य इसलिए कि लेख का अभिप्राय इसी में सार्थक होता है, इसी भाग में विषय का विवेचन और प्रतिपादन किया जाता है। आरम्भ में जिस प्रमुख भाव का आभास दिया गया है वह पल्लवित, पुष्पित और फलित यहीं होता है। इसमें लेख के विषय के अनुसार या तो विश्लेषण की रीति का अवलंबन किया जाता है या संकलन की। व्याख्यात्मक और तार्किक लेखों में प्रायः विश्लेषण और आख्यानात्मक तथा वर्णनात्मक में संकलन की रीति से काम लिया जाता है। विश्लेषण की रीति में रचना में परिव्यास प्रमुख भाव को खोलकर दिखाना उद्दिष्ट रहता है। संकलन में बिखरी हुई सामग्री को इस प्रकार विनियोजित और सुसज्जित करना पड़ता है कि उसमें सुसम्बन्धता आ जाय और वह प्रमुख भाव को व्यक्त करने लगे। विषय के अनुसार लेख के मध्य भाग में कोई सी रीति काम में लाई जा सकती है, पर दोनों ही दशाओं में इस भाग के आवश्यकतानुसार विभाग कर लिए जाते हैं। इन विभागों को अनुच्छेद (Paragraphs) कहते हैं। प्रत्येक अनुच्छेद में दो बातें ध्यान देने की होती हैं, प्रथम यह कि वह रचना के अन्तर्गत अनेक विचारों में से किसी एक ही विचार को व्यंजित करता हो। दूसरे यह कि वह उस विचारशृंखला का क्रमबद्ध

और सयुक्तिक विकास प्रतीत हो, जो उस प्रमुख भाव में संश्लिष्ट है। इस प्रकार हम सहज ही निबंध के मध्यभाग को पूर्ण करके उसकी समाप्ति के लिए तैयार हो सकते हैं।

समाप्ति

समाप्ति का उद्देश्य अधिक से अधिक समय तक पाठक के हृदय को निबंध के प्रभाव से प्रभावित किये रहने का है। निबंध को पूर्ण करते-करते उसके दिल पर एक गहरी लकीर खिंच जानी चाहिए और जब कभी मौका आ जाय वे लाइनें सजीव होकर निबंध के विषय को उसके ध्यान-लोक में मूर्तिमान कर दिया करें। निबंध की समाप्ति में इस सजीवता और ओजस्विता का समावेश करने के लिए कुशल लेखक कई मार्गों का अवलंबन करते हैं। सब से सीधा और सरल तरीका तो यह है कि प्रभावशाली शब्दों में विषय का सारांश लिखकर पाठकों को प्रभावित किया जाय। इसके अतिरिक्त बुरा-भला परिणाम अंकित करके भी पाठकों को विचारलीन किया जाता है, कभी-कभी भूत-भविष्य के चित्रण द्वारा मन में सुधार की आकांक्षा को बलवती किया जाता है, और कभी आरम्भ की भाँति अन्त में भी कोई अनुकूल अवतरण देकर अभीष्ट सिद्ध करने की चेष्टा की जाती है, इत्यादि।

अब निबन्ध-लेखक के सामने भाषा और शैली का प्रश्न उपस्थित होता है। भाषा की शुद्धता और वाक्य-रचना की व्यवस्था पर कैसे अधिकार किया जाय, यह पहले बता चुके हैं। यहाँ भाषा से आशय उसके सरल या दुरूह प्रयोग से है। आरम्भिक लेखकों को प्रायः यह निर्णय करने में कठिनाई होती है कि किस निबंध में सरल भाषा का आधार लें और कहाँ संस्कृत भाषा का प्रयोग करें? इस संबंध में हमें इतना ही वक्तव्य है कि निबंध के उद्देश्य के अनुसार ही भाषा का प्रयोग समीचीन ठहरता है। निबंध-लेखन के दो ही लक्ष्य होते हैं, या तो लेख द्वारा किसी बात का बोध कराना, अथवा भाव विशेष का पाठक के हृदय में संचार

करना। अब जिसे किसी विषय का बोध कराना ही इष्ट होगा, वह भाषा की दुरूहता में अपने विचारों को आच्छन्न न होने देगा। वह तो बढ़िया से बढ़िया तर्कों को काम में लाएगा ताकि उसके कथन की उपयुक्तता सामनेवाले आदमी को जँच जाय। इसके लिए जहाँ तक हो सकेगा वह सीधी और टकसाली भाषा में अपनी विचार-शृंखला पिरोता जायगा। भाषा की आलंकारिकता में पड़कर अपने विचारों के प्रभाव को कम न होने देगा। इसके प्रतिकूल जिसका लक्ष्य भाव-संचार होगा, जो रस-विशेष के प्रवाह में पाठक की मनोवृत्ति को तल्लीन करना चाहेगा, वह तदनुकूल ही परुष कोमल शब्दावली का सहारा लेगा और वैसे ही अलंकारों की योजना करेगा। कवि लोग आलंकारिक भाषा का प्रयोग इसी हेतु करते हैं, पर वैज्ञानिकों को विषय-बोध ही ध्येय होता है इसी से उनके निबंधों में सीधीसादी और स्वच्छ भाषा पाई जाती है। इसी लक्ष्य-भेद को ध्यान में रखकर निबंध के लिए भाषा का निर्णय करना चाहिए।

यहाँ हमें यह भी जान लेना चाहिये कि निबन्धों के कितने प्रकार होते हैं? यों तो विषय के अनुसार निबन्ध अनेक प्रकार के हो सकते हैं जैसे साहित्यिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, आलोचनात्मक आदि, किन्तु वर्णन-प्रणाली के अनुसार उनके मुख्य चार प्रकार हैं—वर्णनात्मक, आख्यानात्मक, व्याख्यात्मक और तार्किक। इन चार प्रकारों के अन्तर्गत प्रायः सभी विषयों के निबन्धों का समावेश हो जाता है।

वर्णनात्मक — कल्पना-लोक में या आँखों के सामने मूर्तिमान दृश्य, व्यापार या विचार को यथावत् चित्रित कर देना ही ऐसे लेखों का उद्देश्य रहता है। ये भावात्मक और बोधात्मक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इनके अन्तर्गत दृश्य ऋतु, मेला, उत्सव, नगर, इमारत, यात्रा और डायरी आदि का वर्णन रहता है।

इस श्रेणी के लेखों में कुशलतापूर्वक वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं

की परम्परा का विधान प्रदर्शित किया जाता है। इनका

आख्यानात्मक लक्ष्य प्राय वस्तुबोध पर कभी-कभी भाव-संचार भी रहता है। इनके अन्तर्गत पुराण, इतिहास, जीवन चरित्र, उपन्यास, कहानी, सामयिक घटना, आविष्कार आदि आते हैं।

ऐसे लेखों का उद्देश्य वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार व्याख्या करके वस्तु-बोध कराना होता है। इनमें शान्ति, क्रोध, क्षमा,

व्याख्यात्मक दया, शिक्षा, मैत्री, स्वावलम्बन आदि व्याख्या की अपेक्षा रखनेवाले अमूर्त विषय समाविष्ट हो सकते हैं।

इस कोटि के निबन्धों में लेखक का ध्येय अपने युक्तिविधान को मनवाने का होता है। व्याख्यात्मक निबन्धों की भाँति

तार्किक इनमें भी वस्तु-बोध ही लक्ष्य रहता है। इनके भीतर तुलनात्मक, आलोचनात्मक, विवादात्मक, सामाजिक, राजनीतिक, आदि निबंध आ सकते हैं।

रही शैली की बात। साधारणतया सरल और दुरूह शब्दों के प्रयोग के अनुसार ही लोग शैली को सरल या कठिन मानते हैं, या यों कहे कि शब्दों और वाक्यों को ही शैली का एक मात्र व्यञ्जक माना जाता है। वस्तुत बात ऐसी नहीं है, शब्द और वाक्य तो सभी की वाणी और सभी के विचारों की सेवा को प्रस्तुत रहते है पर सभी की रचना में तो एक-सा प्रभाव, एक-सा स्वाद, एक-सा प्रसाद और एक-सा लालित्य नहीं पाया जाता। यही भिन्नता वास्तव में शैली का स्वरूप है। शैली शब्दों का प्रयोग करने के ढंग में रहती हैं। कोई लेखक किस प्रकार अपने मनोगत विचार व्यक्त करता है, शैली इसी बात की परिचायक है। रचयिता और रचना का संबंध हमें शैली से ही ज्ञात होता है। वही तो कुशल लेखक का सर्वस्व है। उसी में उसकी मौलिकता रहती है। शैली रचना पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप है।

यों तो किसी कुशललेखक की शैली का यथावत् अनुकरण करना

कठिन ही नहीं असम्भव है, पर नवीन लेखक को अपनी मौलिक शैली स्थिर करने से पहले अपने पूर्ववर्ती किसी बड़े लेखक की शैली को आदर्श मानकर अभ्यास करना चाहिए। उसमें अपनी मौलिकता तो रहेगी ही, साथ ही उस बड़े लेखक की शैली की विशेषताओं का भी समावेश हो जायगा। किन्तु यह कहना कठिन है कि कौन किस शैली का अनुकरण करे। कारण कि प्रत्येक शैली हरएक की विचार प्रणाली के अनुकूल नहीं हो सकती। जिस के विचार सुलझे हुए होंगे तथा भाषा और शब्दों पर अधिकार होगा उसकी शैली धारावाही, सुबोध और संक्षिप्त होगी। जिसका स्वभाव बात को घुमा फिरा कर और चमत्कार पूर्ण ढंग से कहने का होगा वह जटिल पर अलंकृत शैली का अनुकरण करेगा। इसलिए अपनी विचार-परंपरा और अपनी रुचि के अनुसार प्रत्येक लेखक को शैली का चुनाव स्वयं करना चाहिए। शैली पर ही लेखक की सफलता और विफलता का दारोमदार रहता है।

सेठिया कालेज,
बीकानेर

२५-११-३४

शम्भूदयाल सक्सेना

वर्णनात्मक निबन्ध

वर्षाऋतु

वर्षाऋतु बड़ी सुहावनी ऋतु है। ग्रीष्म की भयंकर ज्वाला में झुलसा हुआ संसार जब वर्षा की बूँदों से लहलहा उठता है, तो ऐसा मालूम पड़ता है मानों खँडहर उपवन में बदल गया हो, या मुर्दों का संसार जीवनरस से आप्लावित हो गया हो। चारों ओर हरियाली छा जाती है। सर-सरिताएँ उमंगित होकर बहने लगती हैं। आकाश धूलरहित हो जाता है। वृक्ष धुल जाते हैं। काली-काली घटाएँ उमड़ आती हैं। मयूर नाच उठते हैं। पपीहे विरह को जगा देते हैं। रजनी की काली अँधियारी में जुगुनुओं के दल के दल झिलमिल-झिलमिल करते हुए अपूर्व आनन्द देते हैं। संध्या के अंबर-डंबर और प्रभात की भीनी-भीनी फुहार मन को हरण करती है। झींगुर झनकारने लगते हैं। दादुर बोलने लगते हैं। सारी सृष्टि संगीतमय हो जाती है। सारा जगत अपूर्व आनन्द के आस्वादन में अपने अस्तित्व को भूल जाता है।

जब प्रकृति इस प्रकार सौंदर्यशालिनी हो उठती है, तो मनुष्य का हृदय भी आनन्द के वेग से अधीर हो जाता है। बालक जलक्रीड़ा में निमग्न हो जाते हैं। उत्सव मनाये जाते

लगते हैं। लड़कियाँ झूले झूलती हैं। स्त्रियाँ मलारें गाती हैं। कृषकों के हर्ष का तो ठिकाना ही क्या ? पानी बरसता जाता है, वे हल जोतते और खेत बोते जाते हैं। उनके लिए जल की ये बूँदे मोतियों की वर्षा के समान हैं। स्त्री-बच्चे, पुरुष-पतोहू सब के सब कार्य में लगे हैं। श्रम आज इन्हें नहीं सताता। कार्य से आज उनके शरीरों में थकावट नहीं आती। क्या ही अपूर्व दृश्य है ! चरवाहे गाय भैंसों को जलक्रीड़ा करने के लिए छोड़कर अमराई में जा पहुँचे हैं। वर्षा से धुले हुए पके-पके, मीठे-मीठे आमों का रस चूसते जाते हैं और एक रसीला देहाती गीत गाते जाते हैं। दूसरी ओर निकल चलिए तो जामुन ही जामुन लगे हैं। तोतों के दल के दल उन जामुनों पर स्वच्छन्द विचरण कर रहे हैं। कभी-कभी पुरवैया का एक झोंका आ जाता है, तो पके हुए, फूले हुए रसीले फल बरस पड़ते हैं। अहा, कैसी बहार है !

इस महान उत्सव का कारण क्या है ? क्यों आज दर्शक का मन बेकाबू हो जाता है ? आँखें इस दृश्य को एकटक निहारने के लिए क्यों आतुर हैं ? इस प्राकृतिक परिवर्तन में हृदय क्यों इस प्रकार रम गया है ? मनुष्य, पशु-पक्षी, जड़ चेतन आज सब में हर्ष और अनुराग की बाढ़ क्यों आ गई है ? इसका एक कारण है। गुरुतर कष्ट के उपरान्त साधारण सुख की भी महिमा बढ़ जाती है। ग्रीष्म की कठोर ज्वाला के महाभयंकर कष्ट सहन करने के उपरान्त यह असाधारण, अपूर्व तथा अलौकिक सुख का दृश्य प्राप्त हुआ है तब क्यों न दुनियाँ अपने अस्तित्व को भूल जाय ? योग की पञ्चाग्नि तपने के बाद देवता के वरदान-स्वरूप यह वर्षाकाल

आया है। यह तो हमारी महान साधना की अपूर्व सिद्धि है। यह हर्ष का ही समय है। यह किलोल का ही अवसर है। यह रागरंग की ही वेला है। उत्सव मनाओ। देवताओं की पूजा करो, जिनकी कृपा से ग्रीष्मरूपी दैत्य से सकुशल छुटकारा मिल गया है।

यदि ग्रीष्म के बाद वर्षा का आगमन न होता, यदि शरद और हेमन्त या हेमन्त और शिशिर के बीच वह आती तो क्या होता? क्या ऐसा ही अपूर्व दृश्य होता? क्या इसी प्रकार जगत् में मद और मस्ती छा जाते? क्या प्रकृति की शोभा में प्राणियों का आनन्दरस इसी प्रकार एकाकार हो जाता? तब शायद यह कुछ भी न होता। लोग घरों में छिपे रहते। पशु-पक्षी अपने-अपने निवासस्थानों से बाहर न आते। तब वर्षा का आना वन में बाँसुरी बजने के समान होता। इसलिए वर्षा न केवल सुन्दर बनकर आती है बल्कि सुन्दर और उपयुक्त समय पर भी आती है। गर्मी से जले हुए व्याकुल जगत को ही वर्षा के शीतल फुहारों की आवश्यकता रहती है, उत्तप्त भूमि को ही काली घटा की रिमझिम रिमझिम में आनन्द आता है। कालिदास का मन-मयूर शरद की वर्षा को देखकर नहीं नाच उठा था। आषाढ़ के मेघ ने ही उन्हें भावाभिभूत करके व्याकुल कर दिया था और तभी वे 'मेघदूत की सजल कल्पना' करने में समर्थ हो सके थे। गृहत्यागी बाबा तुलसीदासजी के विरक्त मन को भी वर्षा के अलौकिक दृश्य ने व्याकुल कर दिया था। युवावस्था के मतवाले काल में जिसको त्यागने में उनका मन विचलित नहीं हुआ था, संन्यास को वरण करके जिस स्मृति को वे कब की विस्मृत कर चुके थे। क्या

वही स्मृति सजीव होकर उनकी इन पंक्तियों में नहीं झलकती है,
"घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।"

यह वर्षाकाल ऐसा ही है। इसमें ऐसी ही मादकता है। यह सूखे वृक्षों को हरा कर देता है। मुरझाई लताओं को कुसुमित कर देता है। मरे हुए मनों को नया जीवन दान करता है। भारत की तीन प्रधान ऋतुओं में वर्षा का माहात्म्य इसीलिए सब से अधिक है। वर्षाऋतु का एक-एक दिन नये-नये उत्सवों को लेकर आता है। आज दरिद्रता के कारण भले ही उत्सवों में वह बहार न रही हो, पर एक स्मृति तो क़ायम है। वह आज एक प्राचीन लकीर मात्र रह गई है सही, पर प्रथा बन कर भी वह वृद्ध भारत के यौवनकाल की सूचना दे रही है।

वर्षा के साथ साथ इन आनन्द-उत्सवों का एक कारण यह भी है कि वर्षा पर ही समस्त धन-धान्य की उपज निर्भर करती है। वर्षा का आगमन उस लहलहाती हुई भावी फसल की सूचना है, जिसके लिए सब प्राणी आशा लगाये हुए हैं। वर्षा उस देवदूत की तरह है जो देवता के यहाँ से प्राणिवर्ग के लिए वरदान के सुनहले शब्द लाया है। भला उस देवदूत के स्वागत में कौन अपने हृदय के द्वार न खोल दे? हर्ष, कौतूहल और संभ्रम के साथ सब की आँखें उस वरदान के शब्द बाँचने की ओर लगी हैं। मकई, ज्वार, बाजरा, तिल, और धान के लहलहाते हुए खेत ही वे पंक्तियाँ हैं, जिनमें वरदान की भाषा व्यक्त हुई है। आकाश का इन्द्रधनुष उस देवदूत की मुस्कराहट है। बादलों का मन्द्र-गर्जन उसकी गंभीर वाणी है। चपला की चमक उसका अट्टहास है। उसके इशारों से मालूम पड़ता है कि वह देवता की प्रसन्नता को ही वरदान के

शब्दों में भर लाया है। वह प्रसन्नता निर्मल जल बनकर बरस पड़ी है। नदियाँ और तालाब आज उससे संपूर्ण हो गये हैं। रिक्तता किसी मे भी नजर नहीं आती। आकाश मे पंख खोल कर उड़ी जाती हुई धवल बक-पंक्ति देवदूत के इंगित को समझ गई हैं। हरी-हरी क्यारियों के बीच विचरती हुई बीरबहूटियों ने उसके सदेश को सुन लिया है। नदी के तट पर अपनी प्रेयसी के साथ सानन्द घूमने वाले सारस को भी उसका आना ज्ञात हो गया है। सरोवरों में खिले हुए कमल उसे नमस्कार कर रहे हैं। जुही की लताएँ, मौलसिरी के वृक्ष, तमाल की शाखाएँ और हरसिंगार के झाड़ उसे पुष्पाञ्जलि समर्पित करने की तैयारी करने लगे हैं।

वर्षा, तू धन्य है जो सब के आनन्द का संवर्धन करती हुई आती है। वसन्त की वह पुष्पराशि, उसके वे सुकोमल रक्त-किशलय, तेरी ही अनुकंपा के प्रसाद हैं। वे चैत्र-वैशाख के सुनहले खलिहान, वे माघ और फाल्गुण के नीले-पीले अलसी और सरसों के खेत, तेरे ही वरदान के अमृतफल हैं। यदि तू न होती तो दिवाली और होली के महान उत्सव मनाने की किसे इच्छा होती? यदि तू न होती तो 'वसन्त-पंचमी' के सरस्वती-पूजन के लिए मन्द-मन्द सुरभि को फैलाती हुई आम्र-मंजरी कहाँ से आती? गेंदा और गुलाब, निवाड़ी और बेला, चम्पा और चमेली, केतकी और केवड़ा, खस और मोगरा सभी तेरे चरणों की धूल को अपने मस्तक पर लगाकर सौंदर्य और सुषमा के आगार बने हैं। वन और उपवन, पर्वत और उपत्यका, खेत और मैदान में जो कुछ वैभव है, जितनी भी श्री है, सब तेरे ही साथ आई है। माता वसुन्धरा को 'सजला-सफला

और शस्य-श्यामला' बनाने वाली तू ही है। प्रकृति-वधू का नित्य नूतन शृंगार करने वाली तू ही है।

सृष्टि का श्रेय दुनियाँ बूढे विधाता के सिर पर व्यर्थ ही लादती है। उसमें वह वीर्य कहाँ? उसमे वह तेज कहाँ? उसकी तो सारी शक्तियाँ शिथिल हो गई हैं। वह काम वर्षा ने अपने हाथों मे ले लिया है। उसकी मेघमाला ही सारा सृजन कार्य करती है। बस्तियों की चहल-पहल उसी की रचना है। सघन और असंख्य जीवों से परिपूर्ण प्रदेशों का श्रेय उसी को है। जलचर, थलचर और नभचर सृष्टि की एक मात्र विधायिका वही है। वर्षा महारानी के हाथ में केवल सृजन कार्य ही नहीं है, वरन् संहार कार्य भी बहुत अशों में है। भोले-भाले शंकर ने उसकी कर्तृत्व-शीलता पर प्रसन्न होकर अपने बहुत से अधिकार उसमे हाथों में दे दिये हैं। अतिवर्षण और अनावर्षण वर्षा के रौद्र रूप हैं। जिनको देखते ही सारा संसार त्रस्त होकर हाहाकार करने लगता है, अपने इन रूपों के द्वारा वर्षा महारानी जहाँ चाहती हैं वहाँ सत्यानाश का रूप खड़ा कर देती हैं। वन-उपवनों को मरुभूमि में परिणत कर देना, पर्वतों को समतल कर देना, बाढ़-द्वारा लाखों जनों को गृहविहीन कर देना, उच्च अट्टालिकाओं की भूमिसात् कर देना, और लहलहाती खेती को उजाड़ देना, नदियों को सुखा देना, चारों ओर श्मशान बना देना उसके भृकुटी के एक बल पर सम्भव हो सकता है। अधिक कहाँ तक कहें उसे सारी शक्तियाँ प्राप्त हैं और हम विनीतभाव से उसके समक्ष नतमस्तक होते हैं।

नदियों से लाभ

नदियों के लाभ इतने अधिक हैं कि यदि उनका पूरा-पूरा और सिलसिलेवार वर्णन किया जाय तो एक स्वतंत्र पुस्तक तैयार हो जाय। इस छोटे से लेख में उनका भली प्रकार हवाला दे सकना संभव नहीं है। इस लिए हम यहाँ मुख्य-मुख्य लाभों का ही उल्लेख करेंगे और वह भी संक्षेप के साथ। आशा है पाठक स्थल की कमी को ध्यान में रखकर इस संक्षिप्त वर्णन से ही संतोष करेंगे।

नदी की प्रायः तीन अवस्थाएँ होती हैं—उद्गम, प्रवाह और मुहाना। इन्हीं को हम पार्वतीय, मैदानी और डेल्टा की अवस्था भी कह सकते हैं। पार्वतीय अवस्था में नदी अपना रूप धारण करती है। वहाँ की ऊँची-नीची भूमि उस के प्रवाह को रोकती है, इसलिए नदी को बहुत सा संहार-कार्य करना पड़ता है। वह किनारों को काट डालती है। चट्टानों को तोड़-फोड़ देती है। रास्ते मे आनेवाले वृक्षों और पर्वत-शृंगों तक को गिरा देती है। भूमि के असमतल होने के कारण कहीं वह प्रपात बनाती है, कहीं प्रखर वेग से बहती है, कहीं पोली चट्टानों के नीचे से अपना मार्ग निकालती है। नदी की इस प्रथमावस्था में उसका रूप बड़ा भयानक और दृश्य भयावह होता है। इस अवस्था में यद्यपि लाभ संहार

कार्य ही मुख्य है तथापि कभी कभी वह अपनी प्रखर धारा से काट छाँटकर ऐसे-ऐसे विचित्र प्राकृतिक दृश्य उपस्थित कर देती है, कि कुशल से कुशल कारीगर की कारीगरी भी उनके सामने कोई चीज़ नहीं है। पार्वतीय प्रदेशों में नदियों की बनाई हुई सुन्दर हरी-भरी घाटियाँ दुनियाँ के सब से रमणीय और स्वास्थ्य कर निवासस्थान हैं, जो साधारण लाभ नहीं हैं। तराई की भूमि में नदियों के जल की सुविधा होने से बड़े-बड़े सघन और कीमती जंगल होते हैं। फिर भी नदी के लाभों का आरम्भ एक प्रकार से उसके मैदान में अवतरण होने के साथ होता है। मैदान में उतरते ही उसे बहने के लिए समतल भूमि मिलती है। उसका पहले जैसा वेग नहीं रहता वह शान्त-भाव से मन्द-मन्द गति से प्रवाहित होने लगती है। यहाँ वह पार्वतीय प्रदेश की भाँति अपना मार्ग भी जल्दी-जल्दी नहीं बदला करती। पार्वतीय-प्रदेश में प्रखर वेग से बहते समय उसका जल चट्टानों के टुकड़ों और किनारों की मिट्टी को अपने साथ बहा लाता है। मैदान में वेग कम होने से वह मिट्टी धीरे धीरे निथरती और तह में बैठती जाती है। वह मिट्टी बिलकुल नवीन होने से बड़ी उपजाऊ होती है। साधरणतया यह उपजाऊ मिट्टी नदी के कछार में ही रहती है। वहीं पानी न रहने पर खेती करके उस से लाभ उठाया जाता है। किन्तु कभी-कभी पहाड़ों में वर्षा होने के कारण, या बर्फ़ गलने की वजह से, नदी में बाढ़ आजाती है, उस समय ऐसी मिट्टी कछार के बाहर दूर-दूर तक मैदान में भी बिछ जाती है और खेतों की पैदावार बढ़ाने का कारण बनती है। गंगा और उस की सहायक नदियों ने हज़ारों साल से बढ़ते-बढ़ते उत्तर भारत

के मैदान में सैंकड़ों फीट की गहराई तक ऐसी मिट्टी बिछादी है। यही वजह है कि दोआब, बिहार और बंगाल की भूमि इतनी उर्वरा है। जीवन का आधार एक-मात्र खेती है, उस खेती के लिए सुन्दर और उर्वरा भूमि प्रस्तुत करने का काम नदियाँ ही करती हैं। नदियों के द्वारा हरी-भरी बनाई हुई भूमि में ऊजड़ भूभाग की अपेक्षा वर्षा की अधिक संभावना रहती है।

इसके अतिरिक्त नदियों के जल से आस-पास की खेती की सिंचाई होती है। जब कभी वर्षा नहीं होती तो किसान इन्हीं नदियों का सहारा लेते हैं। जहाँ नदियाँ नहीं हैं, वहाँ अनावृष्टि या असमय की वर्षा का अर्थ दुष्काल होता है पर नदी किनारे की भूमि सदा लहलहाती रहती है। वह वर्षा की परवाह नहीं करती। नदियों के किनारे ही बाग बगीचे लगते और फलते-फूलते हैं। वहाँ उन्हें जल की कमी नहीं रहती। इसके सिवाय नदियों से नहरें निकाली जा सकती हैं। उन से सुदूर और निर्जल प्रदेशों को भी हराभरा किया जा सकता है, ऊसर और मरुभूमि को भी लहलहाते खेतों में तबदील किया जा सकता है, पंजाब और युक्त-प्रान्त की नहरों ने देश की पैदावार बढ़ाने में कहाँ तक भाग लिया है, यह सब जानते हैं। सक्खर की बड़ी नहर सिन्ध के निर्जल भूभाग को उपवन बना देगी, इसमें सन्देह ही क्या है!

देश के भीतरी भागों में नदियाँ जलमार्गों का काम देती हैं। इन्हीं के द्वारा व्यापार और आवागमन होता है। सड़कों और स्थलमार्गों से नदियों के ज़रिये आने-जाने में सहूलियत होती है और व्यय भी कम पड़ता है। भारतवर्ष में रेलों पर इतना अधिक रुपया खर्च करके सरकार अपनी ग़लती को

महसूस करती है। यदि रेलवे कंपनियों में अंग्रेजों की पूँजी न लगी होती तो सरकार शायद उस स्कीम को, जो कई साल तक विचारार्थ पड़ी रही थी, काम में ले आती और आज रेलों की बजाय गंगा, जमुना, सिन्धु और रावी में नावें दौड़ा करतीं। यद्यपि रेलों ने आजकल नदियों के व्यापार और आवागमन को हथिया लिया है, तो भी बहुत से ऐसे स्थान हैं जहाँ केवल नदियों के सहारे ही जाया जा सकता है। पहाड़ों के दुर्गम मार्गों की रचना नदियों ने ही की है, और सब को उन्हीं का अनुसरण करना पड़ता है।

नदियाँ कहीं-कहीं प्राकृतिक सीमा का काम देती हैं। यद्यपि आजकल सांग्रामिक दृष्टिकोण से नदियों का महत्व कम होगया है। हवाईजहाजों, रेलों और स्टीमरों ने उनपर विजय पा ली है, पर तो भी वर्षाकाल में रेलों के पुल तोड़कर कुछ काल के लिए भारत की नदियों को प्राकृतिक सीमाएँ बनाया जा सकता है, यदि हवाईशक्ति का मुकाबला करने की थोड़ी क्षमता हो।

नदियों के तटवर्ती प्रदेश का जलवायु अच्छा स्वास्थ्यकर होता है। इसीलिए आधुनिक नगर भी प्रायः नदियों के किनारे ही बसाये जाते हैं। प्राचीन काल में, रेल-मोटर और हवाईजहाज के अभाव में तो व्यापार-व्यवसाय और आवागमन के लिहाज से भी नगर नदियों के किनारे ही बसाये जाते थे। भारत के तो प्रायः सभी प्राचीन नगर किसी न किसी नदी के किनारे बसे हुए हैं। इस से नगर के स्त्री-पुरुषों को नहाने-धोने और जलक्रीड़ा करने की कितनी सुविधा रहती है? जो बड़े-बड़े नगर नदियों के तट पर बसे होते हैं वहाँ के नागरिकों को जल का कष्ट नहीं होने पाता। सुबह-शाम नदी

के किनारे घूम कर दिमाग तरोताजा किया जा सकता है और शरीर की थकान मिटाई जा सकती है। नाव मे बैठकर मील दो मील की जलयात्रा करके खिन्नचित्त को नवस्फूर्तिमय किया जा सकता है। नदी-तट का वातावरण एक दम शान्त, सुन्दर, पवित्र और आत्मचिन्तन के अनुकूल होता है। वहाँ पर ध्यानावस्थित होकर परम आत्मिकशान्ति लाभ की जा सकती है, और की जाती है।

कहीं-कहीं नदियों के जल मे उपयोगी और स्वास्थ्यवर्धक रासायनिक पदार्थों का मिश्रण देखा जाता है। गंगाजल अपनी पवित्रता के लिए इसी कारण प्रसिद्ध है कि उसमे कई रासायनिक पदार्थों का मेल पाया जाता है। इसी से उसमे कभी जीव पैदा नहीं होते। हैजे आदि बीमारियों के कीटाणु उसमें स्वतः ही मर जाते हैं। फ्रांस की रोन नदी का जल रासायनिक द्रव्य-मिश्रित होने के कारण ही रेशम धोने के लिए काम में लाया जाता है।

नदियों के प्रवाह से पनचक्कियाँ चलाई जाती हैं। नदियों के प्रपातों से बिजली पैदा की जाती है। आजकल का विज्ञान तो बिजली के बिना खड़ा भी नहीं हो सकता। बिजली से जीवनोपयोगी प्रायः सभी काम हो सकते हैं। उसी बिजली का सब से बड़ा संग्रह नदियों से किया जाता है।

अन्ततोगत्वा नदियाँ आकर समुद्र मे गिरती हैं। इस पतन के समय भी वे हमारा हितसाधन करती है। एक तो वे अपने प्रवाह प्रदेश की सारी गंदगी को बहा ले जाकर समुद्र मे डाल देती हैं और निरन्तर डालती रहती हैं। दूसरे वे सागर से पृथ्वी का संबंध कराती हैं। वे एक मार्ग खोल देती हैं।

व्यापार और वाणिज्य के इस युग में तो इस मार्ग का बड़ा महत्त्व है। दुनियाँ के प्रायः सभी बड़े-बड़े बन्दरगाह इन्हीं मार्गों या दहानों पर बसे हैं। भारत के कराची, रंगून और कलकत्ता ऐसे ही बन्दरगाह हैं।

इस प्रकार नदियों की उपयोगिता सर्वसिद्ध है। मांसाहारी लोग नदियों से एक और बड़ा लाभ उठाते हैं। वे अपने भोजन के लिए इनसे मछलियाँ प्राप्त करते हैं। भारत की उच्च जातियों में मांसाहार निषिद्ध है पर तो भी लाखों की संख्या में लोग मछलियों पर ही निर्वाह करते हैं। बंगाल और आसाम में तो सर्वसाधारण के भोजन का एक प्रधान अंग मछली है।

इन्हीं लाभों का विचार करके भारत में तथा अन्यान्य देशों में भी नदियों को पवित्र और पूजनीय समझा जाता है। भारत की मुख्य मुख्य नदियाँ जैसे गंगा, जमुना, गोदावरी, नर्मदा आदि ने प्राचीन काल से हिन्दू जाति के हृदय पर अधिकार कर रक्खा है। वैदिक साहित्य से लेकर अबतक नदियों की महिमा का गान गाया जाता है। मिस्र देश में नील नदी को 'ईश्वर का वरदान' मानते हैं। नदियों के रम्य तटों पर उत्सव मनाने की चाल प्राचीन काल से हरएक देश में चली आई है। ग्रीस, रोम और इंग्लैण्ड के कवियों ने अपने अपने देश की नदियों के अनेक गीत गाये हैं, जो सर्वथा उचित हैं।

जन्माष्टमी

प्रत्येक जाति और प्रत्येक राष्ट्र ने वर्ष के कुछ दिनों को विशेष सम्मान दे रक्खा है। उन दिनों में वह जाति या वह राष्ट्र सार्वजनिक उत्सव मनाता है। यदि उन दिनों की ऐतिहासिकता की खोज करें तो या तो किसी महापुरुष की जन्मतिथि होने के कारण उन्हें वह महत्व प्राप्त हुआ है अथवा किसी जातीय विजय के वे स्मारक हैं। प्रत्येक जाति इस प्रकार के उत्सव मनाकर अपने सजीव होने की घोषणा करती है, और इस तरह गौरवमय अतीत के साथ अपने वर्तमान का सम्बन्ध जोड़ती है। हिन्दू जाति के लिए भाद्रमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी भी इसी प्रकार का एक दिन है। इस तिथि को सहस्रों वर्ष पहले, भगवान कृष्ण ने जन्म लिया था। उनकी जन्म-तिथि होने के कारण ही इसे जन्माष्टमी कहते हैं।

यह हिन्दू जाति के लिए एक परम पवित्र दिन है। इस दिन उस महापुरुष ने जन्म लिया था जिसकी तुलना मे कोई दूसरा महापुरुष नहीं ठहर सकता। प्रायः देखने में आता है कि दुनियाँ में अब तक जो जो महापुरुष हुए हैं उनमें से प्रत्येक में लोककल्याण की एक विशेष प्रवृत्ति अपनी चरमसीमा को पहुँची हुई थी। उसी के कारण वे अपने अपने समाज मे श्रद्धा और भक्ति के पात्र बने। कोई विद्वान था, कोई वीर था, कोई त्यागी था, कोई भक्त था। किसी की वक्तृत्वकला प्रसि—

तो कोई राजनीति का पंडित था इत्यादि। किन्तु हम देखते हैं भगवान् कृष्ण में जैसी सर्वतोमुखी प्रतिभा थी वैसी और किसी में न थी। समस्त सुन्दर और अनुकरणीय प्रवृत्तियों का समुच्चय केवल एक कृष्ण के ही चरित्र में देखने को मिलता है। कहीं हम उन्हें गरीब जनता की सेवा में तत्पर देखते हैं। कहीं परम योद्धा के रूप में पाते हैं, तो कहीं नृत्य और संगीत के आचार्य के रूप में वे हमारे सामने आ जाते हैं। कहीं वे प्रकाण्ड राज-नीति-विशारद बन जाते हैं तो कहीं सामाजिक व्यवस्था देने वाले। उन्होंने कभी स्वयं राज्य की बागडोर अपने हाथ में नहीं ली, लेकिन राजाओं को बनाना और बिगाड़ना उनके बाँयें हाथ का खेल था। उनकी वक्तृता में जादू था, उनके आचरण में पवित्रता थी। वे परम योगिराज थे और अपूर्व उपदेष्टा थे। उन्होंने अर्जुन के रथ का संचालन करके अखिल भारतीय राजनीति का संचालन किया था। उन्होंने गीता का उपदेश देकर अध्यात्म, दर्शन और कर्तव्य की गुत्थियों को सुलझाया था। उन्होंने बाँसुरी बजाकर साहित्य-संगीत और कला की प्रतिष्ठा की थी। उन्होंने अशिष्ट और उद्दंड शिशुपाल का वध करके शिष्टाचार की मर्यादा को स्थिर रक्खा था। उन्होंने महा-भारत का युद्ध कराके पाप और पाखण्ड की दुर्दशा करायी थी। उन्होंने पाँडवों की एकछत्रता स्थापित कराके धर्म और सत्य की पुनर्संस्थापना की थी। दरिद्र सुदामा की भेंट स्वीकार कर उन्होंने विनम्रता का आदर्श उपस्थित किया था।

उनकी प्रतिभा के सूर्य से भारतवर्ष का आकाश जगमग हो गया था। सभी उनका लोहा मानते थे। एक छोर से दूसरे छोर तक लोगों के हृदय उनके आदर-सम्मान को खिंच जाते थे

पञ्चाग्नि तपने के बाद देवता के वरदान-स्वरूप यह

कंस जैसे प्रबल नरेश को उसके सिंहासन पर मारने वाला, जरासंध जैसे भूपाल को उसी के राजप्रासाद में स्वर्ग भिजवाने वाला और दुर्योधन जैसे कुरुवीर की उसी की राजधानी में खुलेआम भर्त्सना करने वाला कृष्ण अवश्य ही अकेला नहीं था। उसके साथ लोकमत था। उसे जनता का बल प्राप्त था। वह जनार्दन था। तभी तो सफलता उसके आगे-आगे चलती थी। यदि वह सब का प्यारा न होता तो यह सब कर सकना क्या उसके लिए शक्य होता ? उसकी लोक-हितैषणा ने शत्रुओं के घर उसके भक्त पैदा कर दिये थे। अपने आचरण के कारण वयोवृद्धों में वह पूज्य था। उसकी उपस्थिति में कोई दूसरा प्रथम अर्घ्य का अधिकारी न था। अपने जीवनकाल में ही इतना सम्मान उसे प्राप्त था।

तभी तो भगवान् व्यास जैसे महर्षियों ने उसका जीवन-चरित्र लिखकर अपनी वाणी को पवित्र किया है। हिन्दूजाति के आधे साहित्य का एक मात्र वही आलंबन है। उसने वैदिक कर्म-कांड की जटिलता में पड़ी हुई शुष्क-हृदय हिन्दूजाति में भावों की गंगा बहा दी थी। उसने संस्कृति और सभ्यता के आदर्शों को आचरण की कसौटी पर कसके फिर से ताजा कर दिया था और यह सब करनेवाला वही कृष्ण था जो कारागृह में पैदा हुआ था। गँवार ग्वालों के साथ खेला और बड़ा हुआ था, तथा बन-बन में गायें चराता फिरा था।

उसी के पवित्र व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध होने के कारण जन्माष्टमी की इतनी महिमा है। उस दिन प्रत्येक हिन्दू परिवार कृष्ण का जन्मोत्सव मनाकर उस महापुरुष की याद करता है। उसकी स्मृति में अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाता है। उसने जन्म

लेकर संसार के सम्मुख जो जो आदर्श रक्खे थे, जन्माष्टमी के दिन उन आदर्शों की याद फिर ताजी हो जाती है। जीवन-संघर्ष में लोगों को पग-पग पर कठिनाइयाँ महसूस होती हैं। ऐसे बहुत कम व्यक्ति होते हैं, जो कर्तव्य के राजमार्ग पर बिना विचलित हुए चले जाते हों। ऐसे लोगों को ठहरकर सोचने और कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय कराने के लिए यह दिन बड़ा उपयुक्त है। इस दिन लोगों की सद्भावनाओं को नवजीवन प्राप्त होता है। वे फिर से अपने कर्तव्य में जुट जाने के लिए प्रेरित होते हैं। उस दिन धार्मिक हिन्दू उपवास रखते हैं, और भगवान कृष्ण की आराधना करते हैं, आधी रात के समय कृष्णजन्म के उपरान्त वह व्रत समाप्त होता है, दिन भर के उस उपवास से एक आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है।

यह कहा जा सकता है—कि हजारों वर्ष से हम यह उत्सव मनाते चले आ रहे हैं, लेकिन दूसरा कृष्ण तो उत्पन्न नहीं हुआ। यह आदर्शों के अनुकरण की बात व्यर्थ सी है। इस प्रकार के जयन्ती-उत्सव सार्वजनिक जीवन पर कोई प्रभाव नहीं डालते। यह केवल मनोविनोद की सामग्री है, और मनो-विनोद अन्य प्रकार से भी किया जा सकता है। इस प्रकार के उत्सव तो व्यक्तिपूजा को प्रश्रय देकर सामाजिक पराधीनता को जन्म देते हैं। लेकिन वास्तविकता यह नहीं है, जो लोग यह तर्क देते हैं वे यह भूल जाते हैं कि हम जो अपना जातीय जीवन सहस्रों वर्ष तक कायम रख सके हैं, अनेक उथल-पुथलों के बाद भी हम जो जीवित हैं, उसमें इन उत्सवों का बड़ा हाथ है। दूसरे कृष्ण पैदा न हुए सही, पर जाति के अन्दर कृष्ण के आदर्शों का आदर करने की भावना तो है।

यह जीवन-जड़ी उसे अमर बनाने के लिए काफी है। तब कौन कह सकता है कि भविष्य मे भी वह अपने उद्देश्य की सिद्धि से वञ्चित रहेगी !

अतः प्रत्येक जाति जो दुनियाँ में जीना चाहती है, उसके लिए आवश्यक है कि वह अपने महापुरुषों की यादगार को सजीव रक्खे। इस प्रकार के जयन्ती-उत्सव उसके जीवन के लिए परमावश्यक और परमोपयोगी हैं। आजकल नवीन सभ्यता की दुहाई देकर कुछ लोग अपने महापुरुषों के प्रति अनादरभाव प्रदर्शित करना ही उचित समझते हैं, लेकिन वे भी अपने न सही तो दूसरों के महापुरुषों के आगे सिर झुकाते हैं। इस प्रकार जातीय-जीवन के लिए ऐसे उत्सवों की मान्यता मे कोई फर्क नहीं आता।

इसलिए प्रत्येक हिन्दू को जन्माष्टमी का उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाना चाहिए। परन्तु इस धूमधाम में निरा बाहरी आडम्बर न होना चाहिये अपितु प्रत्येक व्यक्ति को यह प्रदर्शित करना चाहिए कि उसकी भावना के भीतर भगवान् कृष्ण का अवतार हुआ है, उसकी कर्तृत्वशक्ति में वे आकर प्रवेश कर गये हैं, उनके आदर्श उसके आचरण में आकर मिल गये हैं। जिस दिन ऐसी जन्माष्टमी मनाई जायगी, उस दिन सत्य ही घर घर कृष्ण का अवतार होगा। उस दिन अत्याचार और पापरूप कंस की पराजय हो जायगी, तथा सत्य, धर्म और दया की विजय-पताका उड़ेगी। तब भारतवासियों का ही नहीं विश्व-वासियों का कल्याण होगा। इसमे कौन संशय कर सकता है ?

प्राचीन भारत

प्राचीन भारत के हमारे ज्ञान के संबंध में कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है कि, "आजकल भारतवर्ष का जो इतिहास पढ़ा ज.ता है—जिसे रटकर लड़के परीक्षा देते हैं, वह आधी-रात के सन्नाटे में दिखाई दिये हुए दु:स्वप्न की कहानी मात्र है।······इस पृथ्वी पर भारतवासियों का स्थान कहाँ है, इसका कुछ भी उत्तर ये इतिहास नहीं देते। इन्हें देखने से यही जान पड़ता है कि भारतवासी कहीं हैं ही नहीं, भारत में जो लोग मारकाट, खूनखराबी, लूटपाट कर गये हैं वही जो कुछ हैं सो हैं।" बात भी ऐसी ही है। हम लोग यही मान बैठे हैं कि भारत का इतिहास पठान और मुगल, पोर्चुगीज और अंग्रेजों की विजय का इतिहास है। उनके पहले, और उनके आने के बाद के भारत के विषय में सब की जबानें चुप हैं। उनकी मौजूदगी में भारत था ही नहीं, और उनके आने से पूर्व यहाँ अन्धकार-युग था, यह बात विदेशी सरकार के स्कूलों में भले ही मान्य हो, पर भारत के असली रूप की झाँकी की जिन्होंने एक भी झलक देखी है, वे इससे सहमत नहीं हो सकते।

यदि सचमुच विदेशी-विजेताओं से ही भारतीय इतिहास का अस्तित्व है, तो प्रताप और शिवाजी, रणजीतसिंह और गुरु गोविन्दसिंह, सूर और तुलसीदास, तुकाराम और रामदास, चैतन्य और नानक का जन्म-सूत्र किससे संबधित किया जायगा? इन्हीं विदेशियों के बवण्डर की तह में असली

भारत का प्रशान्त महासागर हिलोरें ले रहा है। यदि हम सुदूर अतीत की ओर दृष्टि डाले, और अपने दृष्टि-क्षेत्र मे भारत के साथ संसार के अन्य देशों और महादेशों को ले ले तो एक अजीब ही दृश्य हमारी आँखों के सामने आजाता है। उस समय ज्ञान और वैभव का सूर्य भारत के आकाश में चमकता दिखाई देता है। दुनिया के दूसरे भागों मे घोर अज्ञान-निशा का साम्राज्य है। जातियाँ सो रही हैं। जो असमय मे जाग उठे हैं, वे अंधिकार मे टटोल-टटोल कर व्यर्थ बाहर निकलने का प्रयत्न कर रहे हैं। इधर सरस्वती और दृशद्वती के किनारे, गंगा और गोदावरी के तटों पर, ज्ञान-विज्ञान और दर्शन की मीमॉसा में लोग रत हैं। हिमालय मे कुबेर का घर है। महासागर में वरुण बसते हैं। वसुन्धरा पर लक्ष्मी नृत्य कर रही है। घरों में सरस्वती का आधिपत्य है। आकाश में सूर्य, चन्द्र और इन्द्र स्वयं मेघों को एकत्र करते हैं। समाज का संगठन स्वयं मनु ने किया है। ब्राह्मण विद्या के आगार हैं। क्षत्रिय वीरता के प्रतिरूप है। वैश्य व्यापार-कुशल हैं। शूद्र अपनी सेवा की पवित्र अञ्जलि से सबको मोल ले रहे हैं। राजा अपने हाथ से हल चलाकर प्रजा को कर्तव्य की महिमा सिखाते हैं। समय आने पर ऋषि तलवार लेकर अत्याचारियों का दमन करते हैं। स्त्रियाँ भी गार्गी और मैत्रेयी, सीता और सावित्री बनकर पुरुषों की सहधर्मिणी बनती हैं। यह है भारत का प्राचीन रम्यरूप! भारत के इसी रूप पर भारतवासी गर्व कर सकते हैं। विदेशी लोगों ने भारत के इस रूप को इतिहास में भले ही स्थान न दिया हो, पर प्राचीन भारत की अन्तरात्मा इन्हीं तत्वों से बनी है।

समय के दूसरे स्तर में प्रवेश करके देखें तो भी भारत का ललाट ऊँचा है। वह अखिल संसार के उद्धार का संदेश, हिमालय के शिखरों पर, बड़े-बड़े अक्षरों में लिख रहा है। दुनियाँ उस धर्म ज्ञान के आगे सिर झुका रही है। काशी और मगध, गया और कपिलवस्तु की ओर संसार की आँखें लगी हैं। भगवान् बुद्ध की वाणी हिन्दमहासागर को लाँघकर तथा हिमालय को बेधकर देशदेशान्तर में फैल गई है। राजा और प्रजा, स्त्री और पुरुष, देशी और परदेशी, उच्च और नीच के भेदभाव को उस महान् दृष्टिकोण में स्थान नहीं है। वहाँ तो प्राणिमात्र के लिए एक-सा भाव है। वह भारत जीवमात्र के दुख से दुखी और उसकी पीड़ा निवारण में प्रयत्नशील है। अशोक के शिलालेखों में आज भी उस भारत का चित्र देखा जा सकता है।

धर्म की भावुकता में ही भारत बहता हो सो बात नहीं। राजनीति और समाजनीति, व्यापार और व्यवसाय, कृषि और उद्योग, विज्ञान और साहित्य में उसकी समता तत्कालीन विश्व में कहाँ है? वह तक्षशिला का विश्वविद्यालय और वह अष्टांग आयुर्वेद तथा वनस्पति-विज्ञान उस समय कहाँ थे? सिकन्दर का व्यास के तट तक आकर पाटलिपुत्र के ऊपर एक ज़ोर न अजमाना क्या नन्दों की रणदुर्द्धर्षता का परिचायक नहीं है? पराजित मल्लों और पोरस की तलवार ने ही क्या सिकन्दर को सावधान नहीं कर दिया था? जिन्हें उष्ण देशवासी भारतीयों की विजय में विश्वास नहीं है वे सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस और सम्राट् चन्द्रगुप्त के संघर्ष और उसके परिणाम को ज़रा देखने की कृपा करें। चाणक्य के अर्थशास्त्र, और नन्दों तथा मौर्यों की अद्भुत सैनिक शक्ति का उससे परिचय मिलता है!

यूरोप में यूनान उस समय चरम उत्कर्ष के दिन देख चुका था तो भी यूनानी मेगास्थनीज़ बड़े आश्चर्य से कहता है कि, "यहाँ (भारत में) दो पौधे बड़े अद्भुत होते हैं—एक कपड़े का पौधा है और दूसरा मधु का।" गणित और ज्योतिष, चिकित्साशास्त्र और नीतिशास्त्र के साथ-साथ भारत ने अरब और यूरोप को ईख और कपास भी दिये थे। उस समय रेल नहीं थी तार नहीं थे, बिजली का यह वैज्ञानिक चमत्कार नहीं था, तो भी भारत के व्यापारपथ विस्तृत और दूरवर्ती देशों तक फैले थे। बर्मा और स्याम, चीन और तिब्बत, फारस और अरब, मिस्र और रोम भारतीय व्यापारियों का मुँह ताकते थे। भारतीय पोत जावा और सुमात्रा तथा बाली आदि द्वीपों के किनारे जब लंगर डालते थे, तो वही दृश्य उपस्थित होता था जो आजकल जापानी और अंग्रेजी जहाजों के कलकत्ता और बंबई में आने से होता है। इस तरह धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, हर दृष्टि से भारत दुनियाँ के लिए आश्चर्य का स्थान था। तो भी यह बात अवश्य है कि भारतीय जीवन में धर्म का स्थान प्रमुख था। उसका प्रत्येक कार्य धर्म से समन्वित था। यहाँ तक कि भारत में राजनीति भी धर्म से अनुशासित होती थी। अशोक की धार्मिक विजय की समानता दुनियाँ की कौन-सी राजनीतिक विजय करती है? खून की नदियाँ बहाकर अस्थायी शान्ति के दिन बहुतों ने देखे हैं, पर अभय का वरद हाथ बढ़ाकर इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण के दिन देखने का सौभाग्य भारत—प्राचीन भारत—को ही मिला है।

पर जब हम जागते थे तो शेष जगत् निद्रामग्न था, और

आज जब दूसरे लोग जाग रहे हैं तो हम पड़े खुर्राटे ले रहे हैं। आज शेप जगत् काम-काज में लगा है। वैभव और आलोक का सूर्य आज भारत के सिर से खिसक कर पश्चिम की ओर चला गया है। हम आज रात्रि के तमोमय अञ्चल में शरण पा रहे हैं। पर क्या इसके यह अर्थ हैं कि आज शेप जगत् की ही सत्ता है हमारा कोई अस्तित्व नहीं है? या हमारे ही साथ हमारा वह गौरवमय अतीत भी शेप जगत् के साथ परिगणित करने की चीज नहीं रहा? यह भ्रान्ति है। हम भी हैं, और हमारा अतीत भी है—और साथ ही शेप जगत् भी है। हाँ, कोई जागता है, कोई सो रहा है। जागने-वालों और सोने वालों, दोनों को ध्यान रखना चाहिए कि कालचक्र की गति एक विशेप नियम के पाबन्द है। जो सूर्य पूर्व से पश्चिम को आज जाता है, वही पुन कल यहाँ प्रभात लायेगा यही प्रकृति का अटल सिद्धान्त है। पूर्वीय देशों की कुलबुलाहट उसी भावी प्रभात की नवस्फूर्ति, नवजीवन और नूतन उत्साह की सूचना दे रही है। किन्तु उस मगलमय प्रभात की प्रथम किरण जब हमारे मन्दिर की चूड़ा का स्पर्श करे तो उसे ऐसा न मालूम पड़ने पावे कि हम विदेशी भावभंगी से उसका स्वागत कर रहे हैं। प्राचीन भारत की विशेपता हमारे अन्दर बनी रहनी चाहिए। ताकि हमें पहचानने में उसे देर न लगे।

हिन्दीभाषा की उन्नति

हिन्दी भापा का जन्मकाल और हिन्दू-साम्राज्य का पतन-काल करीव करीव एक ही हैं। वह समय राजनीतिक उथल-पुथल का था। उस समय हिन्दी केवल समाज के बोलचाल की भापा थी। साहित्यिक भापा का स्थान भी उसे प्राप्त हो गया था पर लड़ाई-भिड़ाई के उस युग मे उत्कृष्ट और कलात्मक साहित्य रचने की किसी को फुर्सत न थी। हिन्दी का आदि रूप जो साहित्य में सुरक्षित है वह भाटों और चारणों के रचे हुए राजाओं के वीरतापूर्ण चरित्रों में है। इसी से उस काल को वीरगाथाकाल कहते हैं। उस समय के काव्यों में हिन्दी का वह रूप था जिसमें अपभ्रंश तथा प्राकृत के शब्दों का ज्यादा प्रयोग होता था।

दो सौ वर्षों तक उपर्युक्त अवस्था को पार करने के वाद हिन्दी भापा का मध्यकाल आरम्भ होता है। यह काल लम्वा और वड़े महत्व का है। यह १३०० से १८०० सं० पर्यंत चलता है। यह काल विशेपताओं की दृष्टि से दो उपविभागों में वॉटा जा सकता है। १३०० से १५०० तक पहला तथा १५०० से १८०० तक दूसरा। पहले भाग में हिन्दी की पुरानी बोलियॉ घिस-मॅजकर क्रमश' व्रजभापा, अवधी और खड़ी बोली के रूप में आयीं। दूसरे भाग में उन्होंने प्रौढ़ता प्राप्त की तथा अन्त मे अवधी और व्रजभापा का वहुत कुछ मिश्रण हो गया। इस दूसरे काल को हिन्दी का स्वर्णयुग कह सकते हैं क्योंकि इसी काल मे सूर-तुलसी, रहीम और विहारी जैसे

कवि विद्वानों का हाथ इसमें लगा। मध्यकाल के बाद वर्त्तमानकाल आरम्भ होता है। इस काल में धीरे-धीरे व्रजभाषा और अवधी का प्रचार कम होकर खड़ी बोली का प्राधान्य होता गया। इस काल में भाषा की प्रवृत्ति गद्यरचना की ओर विशेष हुई, तथा प्राकृत की बहुलता को त्यागकर हिन्दी संस्कृत शब्दों से अपना कलेवर सजाने लगी। संस्कृत शब्दों को लेने की प्रवृत्ति कुछ-कुछ मध्यकाल में ही आरम्भ हो गई थी। आजकल हिन्दू और मुसलमान, साहित्यिक और साधारण जनसमाज सभी के व्यवहार की भाषा खड़ी बोली है पर उसके तीन रूप हैं, (१) शुद्ध हिंदी—जो साहित्यिक भाषा है। (२) उर्दू—मुसलमानों में प्रचलित खड़ी बोली। यह साहित्यिक तथा बोलचाल दोनों की भाषा है। यह अरबी लिपि में लिखी जाती है। (३) हिन्दुस्तानी—यह साधारण जनसमाज में बोली जाती है। इसमें हिन्दी-उर्दू दोनों के शब्द प्रयुक्त होते हैं। यों भी कह सकते हैं, कि शुद्ध हिन्दी और उर्दू की खाई हिन्दुस्तानी में आकर पट जाती है।

इस प्रकार आजकल हिन्दीभाषी प्रान्तों में खड़ीबोली का ही साम्राज्य है और हिन्दी कहने से उसी का बोध होता है। समाचारपत्र और प्रेस के इस युग ने हिन्दी की उन्नति में बहुत बड़ा भाग लिया है। वर्तमान हिन्दी की उन्नति में पाश्चात्य विद्वानों, मिशनरियों का भी उसी प्रकार योग है जिस प्रकार मध्यकाल में मुसलमानों का सहयोग था। इसके अतिरिक्त इस काल के साथ-साथ भारत में एकराष्ट्रीयता का भाव क्रमशः बढ़ा है, उसने हिन्दीभाषा की सेवा करने के लिए भारत के अन्यान्य प्रान्त के लोगों को भी उत्साहित किया है।

क्योंकि इस राष्ट्रीयता के भाव को दृढ़ करने के लिए लोगों को एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता महसूस हुई। तथा सब लोगों ने हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया।

जब से हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहकर स्वीकार किया गया है तब से उसकी उन्नति दिन दूनी, रात चौगुनी हो रही है और उसकी गति देखते हुए यह आशा होती है कि अदूर भविष्य में उसका साहित्य भारत की अन्यान्य भाषाओं से भी अधिक परिपूर्ण और महत्व का हो जायगा। आज हिन्दी में लेखकों, कवियों और विद्वानों की कमी नहीं है। जनता का सहयोग उसे पूरी तरह प्राप्त है। लोग हृदय से हिन्दी का स्वागत करते हैं, न केवल हिन्दी-भाषी प्रान्तों में बल्कि दूसरे प्रान्तों में भी। विश्वविद्यालयों ने उच्च से उच्च कक्षा में हिन्दी के पठन-पाठन की सुविधा कर दी है। जर्मनी और फ्रांस के विश्वविद्यालयों से हिन्दी पर निबन्ध लिखकर उच्चतम उपाधियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। हिन्दी लेखकों की कृतियों के अनुवाद अंग्रेजी और जापानी आदि भाषाओं मे होने लगे हैं। कहने का मतलब इतना ही है कि हिन्दी उपेक्षा के निम्नस्तर से ऊँची उठ गई है। देश-विदेश मे उसका आदर और सम्मान होने के साधन मौजूद हैं। तथापि हमें यह कहते हुए दुख होता है कि सरकार की ओर से जैसा चाहिए वैसा सहयोग हिन्दी की उन्नति में नहीं प्राप्त हो रहा है। जनता की इतनी रुचि देखकर भी वह हिन्दी के प्रति अपनी तटस्थता की नीति को ही बरत रही है। हिन्दी ने सरकारी क्षेत्रों मे जो कुछ प्रवेश पाया भी है वह भी अपने प्रयत्न से। सरकार ने अपने संरक्षण का हाथ स्वत. उसकी ओर बढ़ाने की कभी कृपा नहीं की।

उर्दू यद्यपि प्रचलित हिन्दी का ही एक प्रकार है, पर लिपि-भेद के कारण, तथा अरबी और फ़ारसी भाषा के शब्दों का बाहुल्य होने से वह भारतीयों के लिए अनुकूल नहीं पड़ती। उर्दू को अदालती कार्य जैसे सर्वसाधारण के कामों में व्यवहृत किये जाना, चाय के पहाड़ी पौधे को मैदान में उगाने का हठ करने के समान है। उर्दू ने कुछ मौलिक भेदों के कारण हिन्दी से अपने आपको पृथक कर लिया है। उसकी रक्षा न की जाय, ऐसा हम नहीं कहते। वह रहे, और उसके मौलिक भेदों की रक्षा के लिए अगर आवश्यकता हो तो नवीन साहित्य भी निर्माण किया जाय; पर भारत में सार्वजनिक कार्यों में उपयोग में आने के लिए हिन्दी को ही मुख्य स्थान दिया जाना चाहिए। इंगलैंड में भी फ्रेंच पढ़ लिख और बोलनेवालों की संख्या कम नहीं है, पर सर्वसाधारण के कामों में फ्रेंच का व्यवहार कितना कष्टकर होगा इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

इस प्रकार हम अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आजकल हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा के स्थान पर आसीन हो जाने के कारण दिन-दिन उन्नति कर रही है। जनता ने उसे वह आसन प्रदान कर दिया है जिसके वह वास्तव में योग्य है। हिन्दी की उन्नति का अन्दाज़ उसके समाचारपत्रों तथा प्रकाशित होने वाली पुस्तकों से लगाया जा सकता है जिनकी संख्या दिन-दिन बढ़ रही है। सरकार का भी कर्त्तव्य है कि वह हिन्दी की उन्नति में जनता और देश का साथ दे।

मुद्रणयन्त्र का आविष्कार और विकास

जिस यन्त्र से पुस्तकें, समाचारपत्र आदि छापे जाते हैं उस यन्त्र का नाम मुद्रणयन्त्र है। नई दुनियाँ ने बहुत से महत्वपूर्ण आविष्कार किये हैं। उन आविष्कारों से दुनियाँ का रूप ही बदल गया है। उन सब मे भी यदि किसी आविष्कार को सब से अधिक महत्व दिया जा सकता है तो वह यही मुद्रण-यन्त्र है। तुम्हें आश्चर्य हो सकता है कि रेडियोफोन और टेलीविजन आदि से भी मुद्रणयन्त्र के आविष्कार का महत्व अधिक क्यों है ? तार, बिजली अथवा हवाई जहाजों के आविष्कार को क्यों न वह महत्व दिया जाय ? यह अवश्य है कि ये दूसरे आविष्कार बहुत विचित्र हैं, इनमें छापे की कल के आविष्कार से कहीं अधिक सूक्ष्म बुद्धि और गहन विचारों का उपयोग हुआ है, लेकिन तो भी मुद्रणयन्त्र की महिमा सर्वसम्मत है।

मुद्रणयन्त्र के आविष्कार के इस महत्व का कारण स्पष्ट है, और वह यह है कि पहले विचारों के प्रचार के साधन उप-लब्ध नहीं थे। अगर किसी के ध्यान मे कोई नई सूझ आती भी तो वह उसी के पास रह जाती। दूसरे लोग उसकी सूझ से लाभ नहीं उठा सकते थे। इसलिए अनुसन्धान का कार्य आगे बढ़ता ही न था। साथ ही अपनी नवीन सूझ के लिए कहीं से प्रोत्साहन और आदर न पा सकने के कारण विचार-शील और अनुसन्धानप्रिय उर्वर मस्तिष्क भी हताश हो जाते

थे। आजकल जहाँ कोई नई बात सूझी कि वह इस छापे-खाने की सहायता से संसार के कोने-कोने में पहुँच जाती है। उसमें समस्त संसार की बुद्धि लग सकती है, और अधिक से अधिक उस दिशा की ओर ज्ञानशील होने का अवसर रहता है। पहले हम अपने देश और प्रान्त के लोगों तक ही अपने विचारों का प्रचार नहीं कर पाते थे, और न उनका सहयोग प्राप्त कर सकते थे, अब सारी दुनिया के देश हमारे ज्ञान-रूपी शिशु के क्रीड़ास्थल हैं। दूसरा कारण यह भी है कि इस आविष्कार के हो जाने से यह भय नहीं रह गया कि एक बार ज्ञात हुई बात कभी भूल जायगी। एक प्रति के खो जाने या नष्ट हो जाने से कोई ज्ञात विषय विस्मृत भी हो सकता है पर जब हजारों प्रतियाँ छपती हों तो उस बात के विस्मृत होने की सभावना नहीं रह जाती। कहीं न कहीं वह सदा मिल सकती है। तीसरे इस अविष्कार ने लोगों को अधिकाधिक सख्या में साक्षर और शिक्षित होने में बहुत मदद दी है। प्राचीन काल में पुस्तकें अलभ्य वस्तु थीं। इसलिए शिक्षा प्रचार कभी इस प्रकार सार्वजनिक नहीं हो सका था। आज प्रेस की सहायता से अमीर-गरीब सभी एक एक आने में हिंदी प्राइमर खरीदकर अपने बच्चों को दे सकते हैं।

यों तो अधिकांश आविष्कारों का श्रेय पाश्चात्य देशों को है, और बात भी ऐसी ही है कि पाश्चात्य देशों ने ही आधुनिक विज्ञान को वर्तमान रूप दिया है। यही बात मुद्रणयन्त्र के संबंध में भी कही जा सकती है। इसका भी आधुनिक ढग से आविष्कार और विकास यूरोप की भूमि में ही हुआ है। तथापि लोगों का अनुमान है कि मुद्रणयन्त्र का पहले पहल चीन देश में

अन्तर्गत है। इनके बाद धीरे-धीरे यूरोप के अन्यान्य देशों में भी मुद्रणकला का विस्तार होने लगा और मुद्रणयन्त्र का भी विकास होता गया।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ होते-होते जर्मनी के लोगों ने इस ओर विशेष ध्यान देना शुरू किया। तभी से वहाँ वाले इस कला में निरन्तर उन्नति करते गये। शेफर और स्टोनहोप नामक चतुर और कार्यशील कारीगरों के प्रयत्न से छापने के लिए वहाँ लोहे का यन्त्र बना और धातु के अक्षर ढालने का भी काम आरम्भ हुआ। कहना यह है कि मुद्रणयन्त्र के वर्तमान विकसित रूप का आभास यहीं से मिलता है धीरे-धीरे इसमें और भी अनेक सुधार होते रहे। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में भाप की शक्ति की सहायता से एक ऐसा मुद्रणयन्त्र तैयार किया गया जिसमें समाचारपत्र की दो हजार प्रतियाँ एक ही घंटे में छपने लगीं। कुछ समय बाद भाप का स्थान विद्युत ने ले लिया। जब विद्युत की सहायता से छापने की कल संचालित होने लगी तब तो सोलहपेजी समाचारपत्र की पचपन हजार प्रतियाँ तक प्रति घंटे छपने लगीं। यही नहीं अभी तक बराबर इसमें सुधार हो रहे हैं। इसके प्रत्येक अंग को सांगोपांग और पूर्ण किया जा रहा है। वैज्ञानिकों को अभी तक इसके विकास से पूर्ण संतोष नहीं हुआ है। अबतक ढले हुए टाइप काम मे लाये जाते थे। कम्पोजीटरों को उन्हें यथास्थान लगाना और छप जाने के बाद फिर डिस्ट्रीब्यूट करना—उनके नियत खानों में डालना-पड़ता था। इधर लीनोटाइप की मशीन के आविष्कृत हो जाने से इसकी भी आवश्यकता नहीं रही। अब अक्षरों का ढलना, छपना एक साथ होता जाता है। हिंदी लीनोटाइप-यन्त्र बनाने में बड़ी कठिनाई

यता से सर्वसुलभ है। क्या यह साधारण लाभ है ? क्या प्रातःकाल होते ही दो पैसे में दुनियाँ भर के समाचार और विचार बिना प्रेस के आविष्कार के कभी पढ़ने को नसीब हो सकते थे ? प्रेस ने हमें कुँए से निकालकर अनन्त जगत् में खड़ा कर दिया है। उसने अज्ञान को दूर करके ज्ञान का सूर्य हमारी आँखों के सामने ला दिया है।

जहाँ मुद्रणयन्त्र से अनेक लाभ हुए हैं वहाँ दो चार हानियाँ भी हो रही हैं, पर लाभों का पलड़ा भारी होने से उस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। प्रेस से पहली हानि तो यही हुई है कि लोग मनमानी पुस्तकें छपाने लगे। उत्तम और उपयोगी पुस्तकों के साथ गन्दी और अश्लील पुस्तकों का प्रचार भी संभव हो गया है। इतनी बड़ी तादाद में पुस्तकें निकलने लगी हैं कि अच्छी बुरी का विवेक करना भी कठिन हो रहा है। लोभी और स्वार्थी प्रकाशक रँगीली-चटकीली भाषा में छापकर अश्लील साहित्य देकर समाज में विष के बीज बोते हैं। इसका परिणाम आज हमारे सामने है। दूसरी हानि प्रेस से यह हुई कि लोग सुन्दर अक्षर लिखने की प्राचीन कला को भूल गए। अब कोई बना बनाकर धीरे-धीरे अक्षर लिखने का प्रयत्न नहीं करता। इतना होने पर भी प्रेस के आविष्कार को अन्य तमाम आविष्कारों से अधिक उपयोगी मानना पड़ता है। इसमें दो मत होने की सभावना नहीं है।

"पर्वत जो सब से ऊँचा, हमसाया आसमाँ का।
वह संतरी हमारा, वह पासबाँ हमारा॥"

वास्तव में यह संसार भर के पर्वतों में सबसे ऊंचा है। अफ़ग़ानिस्तान का कुछ भाग, काश्मीर का उपजाऊ प्रदेश, युक्त प्रदेश का समूचा उत्तरी भाग, नैपाल, भूटान, आसाम का उत्तरी भाग, और ब्रह्मदेश का कुछ उत्तरी भाग इसके उदार आश्रय में अपना कालयापन कर रहे हैं। सिंधु और पंजाब की पाँचों नदियाँ, गंगा, यमुना, गोमती, घाघरा, गंडक, सोन और ब्रह्मपुत्र आदि सभी प्रसिद्ध नदियाँ इसी में से निकली हैं। इस पहाड़ में ऐसे-ऐसे घने जंगल हैं, जिन में सूर्य की एक किरण तक का पहुँचना संभव नहीं। पार्वत्य प्रदेश में उत्पन्न होनेवाले फल और मनुष्य अपने में एक विशेष प्रकार की अनन्यता रखते हैं। स्थान स्थान पर ऐसे प्राकृतिक दृश्य हैं, कि जिन्हें देखकर एक बार तो यह संदेह हो ही जाता है कि क्या स्वर्ग का नंदनकानन इन से श्रेष्ठ होगा? स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठक इसे ही देख कर कह बैठे थे—

"कै यह जादूभरी विश्वबाजीगर थैली।
खेलत में खुलि परी शैल के सिर पर फैली॥
प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेश छनिक छवि छिन-छिन धारति॥

× × × ×

यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर।
यहि अमरन को ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥

हिमालय पर उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियाँ और जड़ी बूटियाँ, केवल भारत के ही नहीं संसार के सभी देशों के

मनुष्यों के स्वास्थ्य-वर्धन एवं प्राण-रक्षण का पुनीत कार्य कर रही हैं। इसके सोतों का जल स्वास्थ्यवर्धक है। इस पर उत्पन्न होनेवाले फल, ससार के किसी भी देश के फलों से, मधुरता तथा मानवशरीर पोषण के प्रधान गुण में जरा भी कम नहीं हैं।

इस पर उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के सुगठित शरीरावयवों को देख कर प्राचीनकाल के रोम और ग्रीस के तथा भारत के पुरुप-पुगवों की याद आजाती है। खान-पान एव आहार-विहार में सादगी, जीवन के पारस्परिक व्यवहार मे निष्कपटता, कठिन से कठिन कार्य को सहिष्णुतापूर्वक संपन्न करने की आदत उनके विशेष गुण हैं। और यह तो कौन नहीं जानता, कि हिमालय की घाटियों और बागों में खेले हुए, उसके अन्न, फल और जल के खान-पान से पुष्ट अंगवाले गोरखे संसार की किसी भी समरव्यसनी जाति से शूरवीरता में कम नहीं हैं। हिमालय प्रांत की देवियाँ सौंदर्य में अप्सराएँ ही हैं—नहीं नहीं यदि यह कहा जाय कि बेचारी अप्सराएँ उनके आगे नगण्य है तो जरा भी अत्युक्ति न होगी। उनमें से अधिकाँश की आँखें बड़ी और काली, और उनका रंग गोरा होता है,तथा उनके जीवन मे स्थायित्व का गुण पर्याप्त मात्रा में देखा जाता है। कादम्बरी-कार महाकवि बाणभट्ट की 'महाश्वेता' इन्हीं मे से एक थी।

हिमालय के किसी भी भाग में चले जाइये, प्राकृतिक दृश्य एक से एक सुंदर दिखाई देंगे। काश्मीर की घाटियाँ अपनी नैसर्गिक सुंदरता में अद्वितीय हैं। शिमला, नैनीताल, दार्जिलिंग, मंसूरी आदि स्थान अपनी रमणीयता के कारण प्रति

वर्ष भारतीय तथा प्रांतीय सरकारों को आकर्षित करते हैं। ग्रीष्मावकाश में कितने ही यात्री वहाँ पहुँचते हैं। हरिद्वार में 'हर की पौड़ी' पर या किसी मन्दिर के सर्वोच्च भाग पर चढ़ कर चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखिये, कि जो दृश्य आपको दिखाई देता है, वह अलौकिक और वर्णनातीत है या नहीं ? प्राचीन कवियों ने अपने काव्यों में स्थान-स्थान पर इस गिरि-राज के सुंदर दृश्यों का जो वर्णन किया है, वह यदि विस्तृत रूप से लिखा जाय, तो एक बड़ा ग्रन्थ सहज ही तैयार हो सकता है। कविकुल-चूड़ामणि कालिदास का ऐसा एक भी काव्य या नाटक ग्रन्थ नहीं है, जिसमें उसका एक न एक पात्र उसके आदि, मध्य या अन्त में, हिमालय की उपत्यका में, या उसके किसी शिखर पर, या उससे उद्गत और उसी में से प्रवाहित होने वाली किसी पयस्विनी के तीर पर, मोक्ष-प्राप्ति के लिए साधना करता हुआ, या अपने शत्रुओं का दर्पदमन करने के लिए अथवा विश्व-विजय करने के लिए उग्र तपस्या करता हुआ, अथवा अपनी प्रेयसी के साथ विहार करता हुआ, न पाया जाता हो। हिमालय के पार्वत्य मार्ग में से जाते समय ऐसा मालूम पड़ता है, कि अब इस ऊँचे पर्वत के बाद चढाई नहीं आएगी, पर उक्त पर्वत के उच्च शिखर पर पहुँचने पर एक दूसरा ऊँचा पर्वत दिखाई देता है। इसमें गौरीशंकर, काँचनजंघा और धौलगिरि तीन उच्च शिखिर कहे जाते हैं। गौरीशंकर की ऊंचाई २९००२ फुट है। वहाँ पर सदा बर्फ पड़ी रहती है। अनेक देशी और विदेशी साहसिकों ने इस पर चढ़कर अनेक बार अपनी विजय का झंडा गाड़ना चाहा है, परन्तु सब को अब तक असफल होना पड़ा है।

यहाँ तक गिरिराज हिमालय के विषय में जो कुछ लिखा गया है, उसमें उसके वर्णन के साथ-साथ उससे होने वाले लाभों का भी किंचिन्मात्र अप्रत्यक्ष दिग्दर्शन करा दिया गया है। अब यह वर्णन समाप्त करने के पहिले यह आवश्यक है कि इस गिरिराज से पहुँचनेवाले लाभों का भली-प्रकार दिग्दर्शन करा दिया जाय।

प्रथम लाभ तो यह है, कि यह पर्वत अनेक बड़ी-छोटी नदियों का जन्मदाता है। नदियाँ देश की उपज और पैदावार में सहायक होती हैं। यदि भारत के उत्तर में हिमालय न होता, तो न तो भारत के उत्तर में सिंध से लगा कर आसाम तक अनेक बड़ी छोटी नदियाँ होतीं और न यह इतना लंबा भूभाग धन-धान्यपूर्ण होता, वल्कि मरुस्थल हो रह जाता। साथ ही न इन नदियों और प्रवाहों से उत्पन्न होनेवाली तथा आधुनिक कारखानों को चलानेवाली विद्युत शक्ति ही प्राप्त हो सकती।

द्वितीय लाभ हिमालय से यह है, कि यह जलपूर्ण मेघों को तिब्बत की ओर नहीं जाने देता है। वे इससे टकराकर अपना जल यहीं बरसा देते हैं। और यह जल देश की पैदावार में सहायक होता है।

तृतीय लाभ इससे यह है, कि इसमें अनेक प्रकार की लकड़ियाँ, अनेक प्रकार के पत्थर, अनेक प्रकार के भयंकर पशु, अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ, अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ, और अनेक प्रकार की धातुएँ हैं, ये वस्तुएँ भारत-वासियों की श्री-वृद्धि करने और उन्हें स्वस्थ रखने में बहुत ही उपयोगी हैं।

चौथा लाभ इससे यह है, कि यह हिन्दुस्थान का उत्तरी पहरेदार है। उत्तर से भारत पर आक्रमण करना किसी भी देश के लिए असंभव है। जो लोग इस विषय में वायुयानों की उपयोगिता पर विश्वास रखते हैं, उन्हें जानना चाहिये, कि वायुयान तराई और नैपाल जैसे स्थानों पर आक्रमण कर सकने में ही उपयोगी हो सकते हैं। भविष्य की कह नहीं सकते, आज तक तो यह पर्वतराज दुर्जेय ही रहा है। हाँ, यह बात अलग है, कि इसके शरणागतों के पास वर्तमान विज्ञानाविष्कृत युद्धोपकरण न हों और वे युद्ध-कला में पारंगत न हों।

पाँचवाँ लाभ इस गिरिराज से यह है, कि इसमें अनेक स्वास्थ्यवर्धक, सुन्दर और तीर्थ स्थान हैं। स्वास्थ्य-वर्धक स्थानों पर निवास करके लोग नीरोगता प्राप्त करते हैं। सुन्दर और रमणीय स्थानों को देखकर तथा वहाँ रहकर लोग मानसिक आनन्द प्राप्त करते हैं। तीर्थ स्थानों की यात्रा करके अनेक श्रद्धालु और धर्मात्मा लोग आत्मिक शांति प्राप्त करते हैं—नहीं नहीं अपने विश्वास के अनुसार पूर्वजन्म के और इस जन्म के पापों से मुक्त होकर आवागमन के झंझट को दूर करते हैं।

छठा, और सबसे बड़ा लाभ हिमालय से जो भारत को प्राप्त हो रहा है वह है भारतीयों की मानसिक और आध्यात्मिक भूख की शान्ति। हजारों बरसों से तपोधन आर्य लोग इस पर्वतराज की गोद में बैठकर अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त करते रहे हैं। प्राचीन कवियों से लेकर आजतक के कवि इस पर्वतराज के उच्च शिखरों से प्रतिभा प्राप्त कर अपनी कल्पना की उड़ान उतनी ही ऊँची

उद्गांत हैं। उन तपोधनों के अनुभवों, दार्शनिकों के उच्च विचारों और कवियों की रम्य कविताओं से भारतीय अपने मन की और आत्मा की क्षुधा को शांत करते रहते हैं। सारांश यह कि पर्वतराज हिमालय हमारा पहरेदार है। हमें स्वास्थ्य तथा शारीरिक शक्ति देनेवाला है। हमारी खेती और व्यवसायों को चलाने वाला है, सबसे बढ़कर हमारे मन और आत्मा को संतुष्ट और पवित्र करनेवाला है। इसके उपकारों से भारतीय कभी उऋण नहीं हो सकते। इसके उन्नत शिखर के सामने वे सदा सिर नवाते रहेंगे।



प्रात:काल का उठना

क्या आप इस संसार मे सफल मनुष्यों की श्रेणी मे परिगणित होने के अभिलाषी हैं ? क्या आप चाहते हैं, कि आपके जीवन में ऐसे अवसर या तो आएँ ही नहीं, या यदि आएँ भी तो बहुत ही कम, कि जब, किसी कार्य मे घोर परिश्रम करने पर भी, आपको सफलता प्राप्त न हो ? क्या आपके हृदय में कोई महत्वाकांक्षा है ? और क्या उस महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिए आप प्रतिकूल परिस्थितियों से अविराम संघर्ष करते रहने पर भी असफल ही होते रहते हैं ? और क्या आप यह जानना चाहेंगे, कि आप सरलता पूर्वक अपने संकल्प किस प्रकार पूर्ण कर सकते हैं। यदि हाँ, तो मैं दृढ़तापूर्वक यह बात कहना चाहता हूँ, कि आप, यथा-संभव प्रात काल जल्दी उठने की आदत डालिये। संसार में दीर्घायु प्राप्त करनेवाले ऐसे व्यक्ति कम हुए हैं, और प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाले ऐसे व्यक्ति तो बहुत ही कम—नहीं के ही समान—हुए हैं, जो प्रात'काल उठने के आदी नहीं थे। यदि लोग विलंब से उठते हैं तो स्वाभाविक ही उन्हें अपना हरेक काम विलब से करना पड़ता है, और फिर हरएक बात में तमाम दिन गड़बड़ रहती है।

प्रत्येक धर्म, देश और जाति के महापुरुषों ने प्रातःकाल उठने की प्रशंसा मुक्तकंठ से की है। वे सब लोग, जो अन्य बातों में एक दूसरे के घोर विरोधी हैं, इस विषय पर निरपवाद रूप से एकमत हैं।

फ्रैंकलिन का कहना है, कि जो व्यक्ति देर से उठता है, वह तमाम दिन घोर परिश्रम करते रहने पर भी, रात्रि तक अपना कार्य पूर्ण नहीं कर पाता। डान स्विफ्ट कहता है कि उसने किसी ऐसे आदमी का नाम नहीं सुना, जो सूर्य चढ़ने तक बिस्तरे पर पड़े रहने की आदत रखते हुए भी महत्ता और प्रसिद्धि प्राप्त करने में समर्थ हुआ हो।

बफून नामक एक महाशय प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक हो चुके हैं। उन्होंने अंग्रेजी भाषा में अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया है। किंतु उनके ग्रंथों का इतिहास बड़ा मनोरंजक है, और उनके ग्रंथों के लिखे जाने का सारा श्रेय इसी 'शीघ्र उठने की आदत' को है। वे कहते हैं, कि युवावस्था में मैं देर तक सोते रहने का बड़ा शौकीन था। मेरी इस आदत ने मुझ से मेरा बहुत सा समय लूट लिया। लेकिन मेरे नौकर जोसेफ ने इस आदत को मेरे वश में लाने में मुझे बहुत सहायता दी। मैंने जोसेफ को वचन दिया कि यदि वह मुझे दिन के छः बजे उठा दिया करेगा तो मैं प्रतिदिन उसे एक क्राउन पुरस्कार दूँगा। अगले दिन प्रातःकाल वह मुझे उठाने में चूका नहीं, पर उसे सिर्फ गाली मिली। दूसरे दिन भी उसने यही किया, पर उसे कुछ सफलता न मिली। तब मैंने उसे कहा, कि वह अपना काम करने का ढंग नहीं जानता। उसे चाहिये था; कि वह मेरे वचन का ध्यान रखे और मेरी धमकियों एवं गालियों की परवाह न करे। अगले

दिन उसने वल प्रयोग किया। मैं बहुत क्रुद्ध हुआ। मैंने उसे गालियाँ दीं, पर जोसेफ मुझे उठाने पर तुला रहा, और उठा कर ही माना। इस प्रकार वह प्रतिदिन पुरस्कृत होता रहा। मैं अपने दस-बारह ग्रंथों के प्रणयन के लिए उस जोसेफ का अत्यन्त ऋणी हूँ।

प्रशिया के द्वितीय फ्रेडरिक ने सख्त आज्ञाएँ दे रखी थीं, कि प्रातःकाल के चार बजे के बाद उसे कभी भी न सोने दिया जाय। रूस का पीटर महान कहा करता था, कि मैं अपने जीवन को यथासंभव बढ़ाना चाहता हूं और इसीलिए यथा-संभव कम सोना चाहता हूँ।

इन्हीं महान् पुरुषों के अनुभवों के कारण अंग्रेजी में यह उक्ति प्रसिद्ध है:—

"Early to bed and early to rise
Makes a man healthy, wealthy and wise."

अर्थात् जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को नीरोग, धनी और बुद्धिमान बनाता है।

अब तक तो हमने पाश्चात्य महापुरुषों का मत लिखा है। अब हम अपने भारतीय महापुरुषों के विचार लिखते हैं।

किसी भी पुराण को किसी भी शास्त्र को किसी भी स्मृति को, और किसी भी नीतिग्रंथ को आप उठाकर देख लीजिये सभी में प्रातःकाल उठने के अनेकानेक लाभ वर्णित पाइयेगा। प्रत्येक वैद्यक ग्रंथ में भी प्रातःकाल के समय शैया त्यागना बहुत ही स्वास्थ्यप्रद कहा गया है।

"ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
तत्र दुःखस्य शान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम्॥"

उपर्युक्त श्लोक वैद्यक के प्रसिद्ध ग्रंथ 'भावप्रकाश' का है। इसका अर्थ यह है, कि स्वस्थ मनुष्य को चाहिये, कि वह अपने जीवन की रक्षा के लिए ब्राह्ममुहूर्त में अर्थात् चार घड़ी तड़के उठ जाय और दुःख नाश के लिए भगवान का भजन करे। भारत के प्रसिद्ध साम्राज्य-संस्थापक, और कूट नीतिज्ञ चाणक्य ने निम्नलिखित श्लोकार्ध में कहा है, कि—

सूर्योदये चास्तमिते शयानं विमुंचत श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥

अर्थात् सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोनेवाले को, चाहे वह चक्रधारी विष्णु ही क्यों न हो, लक्ष्मी छोड़ देती है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है, कि आखिर सूर्योदय से पहले उठने में ऐसा कौन-सा जादू है, जो प्राच्य और पाश्चात्य महापुरुष उसकी प्रशंसा करते हैं।

इस प्रश्न पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार भी किया गया है। भारतीय और भारतीयेतर वैद्यक ग्रंथों में लिखा है, कि सूर्योदय से कुछ पहले के समय की हवा बहुत मनोरम और नीरोगता-प्रद होती है। यदि कहा जाय, कि स्वास्थ्य के लिए अमृत-तुल्य होती है तो जरा भी अत्युक्ति न होगी। भारतीय वैद्यक ग्रंथों में उस समय को अमृतवेला कहा है। उस समय की हवा खून को साफ करती है। उसकी गति को तीव्र करती है। उस समय मस्तिष्क तरोताजा एवं हलका रहता है, इसीलिए उस समय किसी भी विषय पर विचार करने के पश्चात् जो निर्णय किया जाता है, वह अधिकाधिक निर्दोष होता है। उस समय मनुष्य अपने शरीर में एक विशेष प्रकार की फुर्ती अनुभव करता है। विद्यार्थियों को अपना पाठ उस समय बहुत जल्दी याद हो जाता है, और फिर सरलता से भूला नहीं जाता।

एक बार आप चार बजे उठकर देखिये। आपको पता लगेगा, कि आप स्वर्गीय आनन्द उपभोग कर रहे हैं। शैया त्याग कर मुखमार्जन और दंत-मंजन आदि से निवृत्त होकर अपनी छत, किसी बाग या सड़क पर टहलिये उस समय आप अनुभव करेंगे, कि आप मे, गत रात्रि को सोने से पहिले की अपेक्षा अधिक उल्लास, अधिक उत्साह, अधिक कर्मण्यता, अधिक स्फूर्ति, अधिक कर्तृत्व शक्ति और अधिक मानसिक एवं शारीरिक वल है। यदि गतरात्रि को आप किसी मानसिक चिंता से चिंतित थे, तो आज महसूस करेंगे, कि आप कुछ समय के लिए बिलकुल निश्चिंत हैं।

इसके विपरीत आप एक बार सूर्योदय के बाद सात, आठ या नौ बजे उठिये। सबसे पहले तो, नींद उड़ जाने पर और आँखें खुल जाने पर भी बिस्तरे पर ही लेटे-लेटे करवटें बदलते रहने की और शैया न त्यागने की आपकी इच्छा होगी। आपको पता लगेगा, कि आप में चिड़चिड़ापन है। आपके अंग प्रत्यंग बिलकुल वलहीन एवं ढीले हैं। किसी भी काम के करने को आपका जी नहीं चाहता है। आप में उल्लास नहीं के बरावर है। आप में उत्साह का पर्याप्त-रूपेण अभाव है। आपकी कर्मण्यता का दिवाला निकल चुका है। स्फूर्ति आपसे संबध विच्छेद कर चुकी है। कर्तृत्वशक्ति आपसे असहयोग कर चुकी है। सारांश यह कि न तो आपका शरीर आपके अधिकार में है, और न आपका मस्तिष्क ही। आपके हाथ-पैर के मुक्त रहते हुए भी आप किसी बंधन से बँधे हुए हैं। भला यह कितने दुःख का विषय है, कि बिना किसी प्रकार के रोग से ग्रस्त हुए, आपकी ऐसी दशा हो जाय, कि आप अपनी प्रबल इच्छा

होते हुए भी, कोई कार्य अपनी इच्छानुसार न कर सके। इन सब कमजोरियों का कारण देर से उठना है। अतः यदि आप इस पर विजय पाना चाहते हैं तो प्रात:काल उठने की आदत डालिए।

यदि आप प्रातःकाल उठने का लाभ समझ गये हैं, और सदा प्रातःकाल उठने का पक्का इरादा कर चुके हैं, तो आपको हम यह भी कह देना चाहते हैं, कि अभ्यासी के लिए यह कार्य प्रारम्भ में कुछ कठिन अवश्य है। किन्तु आपको चुन लेना होगा, कि प्रात:काल उठने की आदत डालने की कठिनता तथा उसमे होने वाले लाभ—इन दोनों मे से कौन श्रेष्ठ है? किसी भी कार्य या किसी भी आदत को केवल कठिन होने के कारण ही छोड़ देने से तो काम नहीं चलेगा।

जल्दी उठने के लिए यह नितांत आवश्यक है, कि आप शीघ्र ही सो जाएँ। प्रकृति ने अपने अनिवार्य नियमानुसार हमारा निर्णय ही इस प्रकार किया है, कि हम मध्य रात्रि के पूर्व ही विश्राम करने चले जाएँ। डॉक्टर डाइट अपने विद्यार्थियों से कहा करते थे, कि मध्यरात्रि के पहिले की एक घंटे की नींद उसके बाद के दो घंटों की नींद के समान है। इसलिए आप ठीक दस बजे सो जाएँ। ऐसी दशा मे आप पांच बजे आसानी से उठ सकेंगे, और आपको किसी भी प्रकार यह आदत डालनी चाहिये।

वसन्त ऋतु

कवियों ने वसन्त को ऋतुराज कहा है। यह उपमा इस कदर पूरी उतरती है, कि विशेष कुछ कहने की जरूरत नहीं रह जाती। वसन्त का वैभव राजाओं का सा ही है। फूलों का मुकुट पहनकर जब वह आता है तो कौन उसे राजा नहीं मानता? कोयल आम की डाल पर बैठकर जब मतवाली हो कर गाती है तो इसके सिवाय कुछ मन में आता ही नहीं कि वह प्रकृतिरानी को उसके प्रियतम ऋतुराज के आने की सूचना दे रही है। रात ही रात में दुनियाँ बदल जाती है। नई नई स्निग्ध कोमल कोंपलें लता और वृक्षों को ढक लेती हैं। आम मंजरी से लद जाते हैं और इस प्रकार झूमने लगते हैं मानों ऋतुराज के ऊपर चँवर डुला रहे हों। वन और उपवन राजमहलों की तरह श्री और शोभा सम्पन्न हो जाते हैं। फूलों की सुगन्ध और मकरन्द का इत्र सब जगह छिड़क दिया जाता है। ऋतुराज के भरे दरबार का एक बार भी दर्शन कर लेनेवाले जीवन भर अपने को कृतार्थ मानते हैं।

यों तो वसन्त ऋतु के महीने चैत्र और वैशाख माने जाते हैं। वास्तव में अत्यन्त प्राचीन काल में इन्हीं महीनों में वसन्त का आगमन भी होता था, पर कालक्रम से इधर सूर्य और पृथ्वी की स्थिति में बहुत अन्तर पड़ गया है। यह तो सबको मालूम ही है कि ऋतु-परिवर्तन सूर्य और पृथ्वी के स्थिति-भेद

से ही होता है। यदि सदा उनकी एक सी स्थिति रहती तो ऋतु कभी न बदलती। लेकिन उनकी स्थिति एक क्षण के लिए भी स्थायी नहीं है, और सदा बदला करती है। फल यह हुआ है कि प्राचीन काल में जहाँ वसन्तारम्भ चैत्र के शुरू से होता था वहाँ पर अब वसन्तपचमी से ही हो जाता है। अब वसन्त-ऋतु यथार्थ में आधे माघ से आधे चैत्र तक रहती है।

इस समय सूर्य काफी दूर तक उत्तरायण मे आ जाता है। उसकी किरणें उत्तरी भूमडल पर पहले से अधिक सीधी पड़ने लगती है। शीत की कठोरता कम हो जाती है। ग्रीष्म की विकरालता भी तब तक नहीं आने पाती। हिमालय की उत्तरी शीतल शुष्क हवाओं का चलना बन्द हो जाता है। उनके स्थान पर शीतल-मन्द-सुगन्ध दक्षिणसमीर का सचार होने लगता है। मजे का मौसम होता है। न बहुत शीत, न बहुत उष्ण। अत्यन्त शीत से गाढ़ा हुआ रक्त नाड़ियों मे फिर से संचालित होने लगता है। जाड़े की लम्बी लम्बी रातों और छोटे छोटे दिनों मे ठिठुरी हुई दुनियाँ अब शीत से त्राण पाकर अंगडाई लेने लगती है। प्रकृति भी लम्बी निद्रा के बाद आँखें खोलती है। हिमाहत हरियाली मे भी नवीन रस का संचार होने लगता है। वसन्तपंचमी के आते-आते ऋतु में इस प्रकार परिवर्तन दिखाई देने लगता है। प्राकृतिक शोभा से माता वसुन्धरा का वक्षस्थल दर्शनीय हो उठता है।

वसन्तऋतु में ज़रा अपने घर की चहारदीवारी से बाहर चले जाइये। दुनियादारी और गृहस्थी के झंझट से थोड़ी सी फ़ुरसत निकालकर कुछ देर के लिए प्रकृति के आँगन मे सैर कर आइये। आहा! कैसी शोभा है! कैसा आह्लाद है! कैसा

उन्माद है ! कैसी रमणीयता है ! कितनी सुषमा है ! नाना प्रकार के फूल खिले हैं। उनके रूप रंग का तो कहना ही क्या ? कोई नीला है, कोई पीला है, कोई गुलाबी है, कोई बैंगनी है, कोई चम्पई है, कोई केसरिया है, कोई एक दम लाल है। आम की मंजरी और तरह तरह के फूलों को स्पर्श करके, उनकी भीनी सुगन्ध के भार से लदी हुई, जो मन्द बयार धीरे-धीरे चल रही है उस में कितनी मादकता है ? तभी तो कोयल अधीर होकर गा रही है। सौरभ ने भौंरों और मधुमक्खियों को उन्मत्त बना दिया है। वे मधुर-मधुर भीनी-भीनी गुंजार करते हुए फूलों के रस का पान कर रहे हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रकृति के रोम रोम से संगीत की स्वर-लहरी फूटी पड़ती हो। भाँति भाँति के पक्षियों से वन-उपवन मुखरित हो उठे हैं। प्रकृति के महोत्सव के सुन्दर समय में उनके कल-कंठ और भी रसीले हो गये हैं। जंगली पशुओं में स्वच्छंद विचरने की इच्छा बलवती हो गई है। प्रकृति के रंगबिरंगे परिधान में वे कभी छिपते, कभी प्रकट होते, और कभी क्रीड़ा करते हुए दिखाई पड़ते हैं। प्रात:काल सूर्य भी नई शोभा को लेकर निकलता है। चाँदनी मस्ती बरसाने लगी है। तारागणों में सदा से अधिक मनोहारिता आ गई है। दिन और रातें दोनों ही समसुखद हो गये हैं। कहाँ तक कहा जाय जड़ और चेतन सभी में एक प्रकार की अपूर्व विलक्षणता का समावेश हो गया है। सब में जीवन-धारा अबाधगति से प्रवाहित होने लगी है। सूखे ठूँठ लहलहा उठे हैं। मुर्दों में प्राण का संचार हो गया है। जीवन और स्पन्दन स्फूर्ति और सजगता से चारों दिशाएँ भर गई हैं।

ऐसे समय मनुष्य का तो पूछना ही क्या ? वह तो सब से बडा सौंदर्योपासक है। उसका हृदय तो इस समय बाँसों उछलने लगता है। यह सुहावना काल उसे इस कदर प्रिय है कि उसने इसे अपने साहित्य मे सुरक्षित कर रक्खा है। वसत जैसा विस्तृत, विशद और सांगोपाग वर्णन और किसी काल का नहीं मिलता। चित्रों मे वसन्त है। काव्यों मे वसन्त है। गीतों में वसन्त है। कहाँ तक कहें वसन्त को जीवन मे भर रखने के लिए मनुष्य का अधिक से अधिक प्रयत्न हुआ है। यह सब इसीलिए कि उसकी अपूर्व छटा ने उसके हृदय को विमोहित कर लिया है। उत्सुकता और उल्लास मे मग्न हो कर वह आत्मविस्मृत हो गया है। उसकी हार्दिक परवशता और आत्मविस्मृति अनेक स्रोतों से फूट पड़ी है। प्रकृति के माधुर्य पर रीझकर वह कभी गाता है, कभी गुनगुनाता है और कभी उत्सव मनाता है और कभी भावविभोर होकर नाचने लगता है। वसन्तपचमी के उत्सव से उसके उल्लास-समुद्र में ज्वार आने लगते हैं। होली की पूर्णिमा वह रात्रि है जब कि वह ज्वार अपनी सीमा को पहुँच जाता है। प्रकृति के रग मे रँगकर, संसार के आनन्द में आनन्दित होकर, मनुष्य प्रेम और वासना के प्रवाह में अपने को छोड़ देता है। वसन्ती वस्त्रों से स्त्रियाँ सज जाती हैं। पुरुष गुलाल और रंग की वर्षा करते फिरते हैं। पिचकारियाँ चल रही हैं। रग से कपड़े भीग गये हैं। शरीर तरबतर हो रहा है। हँसी और मुस्कराहट फैल रही है। गलियों में, बाजारों में, घरों में,-दरवाजों पर टोल के टोल बालक वृद्ध स्त्री-पुरुष जमा हैं। सगीत छिड़ रहे हैं। समाँ बँध रहा है। राग अलापे जा रहे हैं। इस

मर्यादोल्लङ्घन को देखकर कोई कोई विदेशी भारतवासियों के सभ्य होने मे सन्देह करने लगते हैं। उन्हीं की देखादेखी कभी-कभी कोई-कोई भारतवासी भी नाक भौं सिकोड़ते और सुधार का झडा ऊंचा करते दिखाई देते हैं, किन्तु उन्हें जाकर विधाता को समझाना चाहिए। उसकी रसिकता को ही दोष देना चाहिए कि उसने भारतभूमि को दुनियाँ से निराला क्यों बनाया ? मनुष्य के लिए तो प्रकृति के उन्माद से उन्मत्त होना स्वाभाविक ही है। जब प्रकृति का रूप-सौन्दर्य अपनी मर्यादा का अनायास उल्लङ्घन कर जाता है तो उसके पुजारी, मनुष्य की भावना क्यों न आलोडित हो उठे ? हमारी समझ से तो अगर मनुष्य इस महोत्सव मे अपने भावातिरेक का परिचय न देता तो वह अस्वाभाविक गम्भीरता का ढोंग रचने का प्रयत्न करता।

वसन्त ऋतु सबसे अधिक स्निग्ध ऋतु है। फूलों और पत्तों से लेकर समस्त प्राणियों में इस समय स्निग्धता और सरसता का आधिक्य रहता है। इसलिए यह ऋतु स्वास्थ्य-सुधार के लिए सर्वोत्तम है। इस ऋतु में प्रातःकाल का वायु-सेवन और भ्रमण बड़ा लाभदायक होता है। जो लोग इस ऋतु में प्रकृति के सामीप्य में ज्यादा रहते हैं, स्वच्छ वायु का सेवन करते हैं, वे वर्ष के शेष भाग में आधि-व्याधियों से मुक्त रहते हैं। जो विपरीत आहार-विहार के कारण इस ऋतु में रोगग्रस्त हो जाते हैं, उन्हें साल भर कष्ट उठाना पड़ता है। स्निग्ध होने के कारण ऋतु में कफ की प्रधानता रहती है। अतः इस ऋतु के रोगियों को खाँसी आदि के कारण बड़ा परेशान होना पड़ता है। इस ऋतु के लिए भ्रमण ही पथ्य कहा गया है।

इसी ऋतु में मधुमक्खियों, भौंरों और तितलियों के एक फूल से दूसरे फूल पर बैठने से वनस्पतियों में रज और पराग का मिश्रण होता है। यह कार्य हवा के द्वारा भी होता है। पर ये कीट-पतंगे सृष्टि-विधान में बहुत कुछ योग देते हैं। केवल वनस्पति जगत् ही क्यों बहुत से पक्षियों और जंगली जीवों के यह गर्भाधान का काल है। अगर कहें तो कह सकते हैं कि जाड़े में बूढ़े विधाता के हाथ भी सृजन-कार्य जल्दी जल्दी नहीं कर पाते इसलिए वसन्त में वह उस कमी को पूर्ण कर देते हैं। हेमन्त में जहाँ जीवधारियों के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं, वहाँ वसन्त के साथ ही उनकी सृष्टि बड़े वेग से होने लगती है। क्या वनस्पति जगत् और क्या पशु-पक्षी, सबका मेला लग जाता है। वसन्त एक नया संसार लेकर अवतरित होता है। इसीलिए उसमें इतनी सजीवता है।

भारत की सी ऋतुओं का विधान दुनियाँ के और किसी देश में नहीं है। कहीं दो ही ऋतु होती हैं, कहीं तीन और कहीं चार। कोई कोई ऐसे देश भी है जहाँ सदा एक ही सी ऋतु, थोड़े बहुत अन्तर से, रहती है। किसी देश में वर्षा का कोई काल ही निश्चित नहीं। कहीं कहीं चार-चार पाँच-पाँच वर्ष तक वर्षा नहीं होती। इस दृष्टि से भारत सौभाग्य-शाली देश है, जहाँ क्रम-क्रम से दो नहीं, चार नहीं, छः ऋतुओं का फेरा हरसाल होता है। उनमें भी भारत की वसन्तऋतु तो तीनों लोकों के अभिलाष की वस्तु है। तभी तो देवता भी भारतभूमि में जन्म लेने के लिए उत्सुक रहते हैं।



समाचारपत्रों से लाभ

अंगरेजी राज्य के साथ-साथ हमारे देश में कुछ नई चीजें आई। इन चीजों में से एक चीज है समाचारपत्र। अंगरेजों से पहले समाचारपत्र का कोई नाम भी न जानता था। भारत में अंगरेज अधिकारियों ने ही सबसे पहला समाचार पत्र निकाला था। आज तो भारत की विभिन्न भाषाओं में सैकड़ों समाचारपत्र प्रकाशित हो रहे हैं। समाचारपत्रों से पहुँचनेवाले लाभों का दिग्दर्शन कराना ही इस लेख का ध्येय है।

समाचारपत्र संचालन स्वयं ही एक व्यवसाय है यद्यपि अब तक शुद्ध व्यवसाय के रूप में, हमारे देश में इसका बहुत ही कम प्रचलन हुआ है, तथापि कुछ व्यक्ति और कुछ कंपनियाँ ऐसी हैं, जिन्होंने इस कार्य को केवल व्यवसाय के रूप में करके धन और यश प्राप्त किया है। और अधिकांश में तो यह कार्य यहाँ अभी लोकसेवा के नाम पर ही किया जाता है। कुछ दूरदर्शी पत्रकार महानुभावों का यह अनुमान है, कि निकट भविष्य में यह कार्य शुद्ध व्यापारिक दृष्टि से किया जायगा, इसके पूर्व चिह्न तो अभी से दृग्गोचर होने लगे हैं। जब यह कार्य स्वयं ही एक व्यापार है तो यह भी हमें मानना पड़ेगा, कि इसकी उपयोगिता अस्वीकार नहीं की जा सकती। कितने ही व्यक्तियों की इससे रोटी चल सकती है, और अनुभवी व्यक्ति तो मालदार हो सकते हैं।

देश-विदेश के समाचार जानना, एक वैयक्तिक लाभ के रूप में समाचारपत्रों से ही सभव है। संसार में भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्ति हैं। उनकी रुचि भिन्न-भिन्न प्रकार की है। वे अपनी रूचि के अनुमार भिन्न भिन्न प्रकार के सवादों को पसंद करते हैं। पृथ्वी के विभिन्न भागों मे विभिन्न प्रकार की घटनाएँ घटा करती हैं। यह समाचारपत्रों का ही कार्य है, कि वे उन विभिन्न प्रकार की घटनाओं का संवाद दुनियॉ के इस छोर से उस छोर तक पहुँचा दें।

हमारे राष्ट्रीय जीवन के निर्माण का कार्य समाचारपत्र करते रहत हैं। पाश्चात्य देश की सरकारें इनकी महत्ता को खूब जानती हैं। बात की बात में ये जनता की विचारधारा को पलट सकते हैं। जनता को किसी भो शासनप्रणाली के अनुकूल या प्रतिकूल ये बात की बात में कर सकते है। इन का यह प्रभाव तो शिक्षित प्रदेशों मे होता है, भारत जैसे अशिक्षित देश की तो बात हो निराली है।

समाचारपत्रों का एक लाभ विज्ञापन है। छोटे से छोटे दूकानदार से लेकर बड़ी से बड़ी कपनी को भी इस बात की अनिवार्य अवश्यकता रहती है, कि उनका माल बड़ी मात्रा में बिके। यह तभी हो सकता है. कि जब बहुत से आदमी इस बात को जाने, कि अमुक व्यक्ति की दूकान पर अमुक वस्तु अच्छी और सस्ती मिलती है,अथवा अमुक कंपनी अमुक माल बहुलता से निर्माण करती है। अब दूकानदार या बड़ी से बड़ी कंपनी के लिए भी तो यह संभव नहीं कि वह एक एक व्यक्ति को अलग अलग इस बात की सूचना देती फिरे। ऐसा करने मे उसे समय और धन के अपव्यय तथा असुविधा की

अधिकता का सामना करना पड़ेगा। पर समाचारपत्रों में विज्ञापन छपाकर आप यह कार्य सरलता से कर सकते हैं। आपको नौकर की, अपने बच्चों के लिए अध्यापक की, कन्या या पुत्र के लिए वर या वधू की, या अन्य किसी प्रकार की आवश्यकता है, तो आप किसी समाचारपत्र में विज्ञापन दीजिये, आप अधिकांश में सफल ही होंगे।

समाचारपत्रों से अनुकूल या प्रतिकूल प्रचार भी किया जा सकता है। एसेंबली, काउंसिल, म्युनिसिपलबोर्ड या अन्य किसी संस्था के चुनाव के समय उम्मीदवार लोग अपनी सच्ची या झूठी, महत्ता और उपयोगिता, मतदाताओं को बतलाने तथा अपने प्रतिस्पर्धी को मतदाताओं की दृष्टि में गिरा देने के इरादे से अन्य प्रकार के प्रचार-साधनों के अलावा समाचार पत्रों का विशेष रूप से सहारा लिया करते हैं और यह निश्चित ही है, कि जिस उम्मीदवार का प्रचार समाचारपत्र बढ़िया ढंग से करते हैं, वही सफलता प्राप्त करता है।

यह लोकतंत्र का जमाना है। इस समय प्रत्येक शासक को, चाहे वह कितना ही स्वेच्छाचारी हो, अपने प्रत्येक अच्छे या बुरे कार्य के लिए, अपने शासितों को अनिच्छा-पूर्वक ही सही, उत्तर देना पड़ता है। अतः प्रत्येक शासक चाहता है, कि जनता उसके पक्ष में हो, उसकी कार्यप्रणाली का समर्थन करे, उसके द्वारा निर्मित नियम का औचित्य स्वीकार करे। इसलिए वह समाचार पत्रों द्वारा ही अपनी नीति का जनता पर स्पष्टीकरण कर सकता है। जनता के नेता भी अपनी नीति समझाने के लिए ऐसा ही करते हैं। दूसरी ओर शासित भी अपने शासक या नेता की कार्यप्रणाली के

विषय में जानना चाहते हैं। वे समाचारपत्रों में लेखों द्वारा ही उनके कार्यों की अनुकूल या प्रतिकूल समालोचना करते हैं। और प्रायः देखा जाता है, कि बुद्धिमान शासक या नेता अपने कार्यों का विरोध होते हुए देखकर अपनी कार्यप्रणाली को बदल देते हैं, और जो अपनी राजकीय प्रतिष्ठा या नेता-गिरी के घमंड में रहते हैं, वे अंत में मुँह की खाते हैं।

लोकशिक्षण का कार्य भी समाचारपत्र सुचारु-रूप से संपन्न करते हैं। थोड़े समय में, अधिकाधिक दूर तक के, अधिक से अधिक मनुष्यों को, किसी सिद्धान्त के अनुकूल या प्रतिकूल शिक्षा समाचारपत्र ही दे सकते हैं। वे अपने प्रति-पाद्य विषय के अनुकूल समाचार, लेख, कविता, कहानी, चुटकले आदि प्रकाशित करते हैं, और यदि वे अनुकूल न हुए तो उन्हें अनुकूल बनाकर, वे प्रकाशित करते हैं। गरज, कि समाचारपत्र संवाद देकर, विचार प्रकट करके और विज्ञापन देकर—इन तीन प्रकारों से लोकशिक्षण का कार्य करते हैं।

समाचारपत्रों से एक लाभ यह भी होता है, कि वे एक समाज, संप्रदाय, देश या राष्ट्र की जनता को दूसरे समाज संप्रदाय, देश, या राष्ट्र की प्रत्येक बातों से परिचित कराते रहते हैं। दो देशों में मैत्री या विरोध संबंध स्थापित कराने में ये प्रधान भाग लेते हैं। किसी दूसरे या निकट देश की किसी विशेष प्रकार की हलचल का अपने देश पर वर्तमान समय में कैसा प्रभाव पड़ने की संभावना है, या भविष्य में कैसा पड़ेगा यह बात समाचारपत्र ही बतला सकते हैं।

समाचारपत्रों से होनेवाले लाभों की समाप्ति यहीं नहीं हो जाती। अभी वास्तव में उनके पूरे पूरे लाभों का पता ही नहीं

लगा है। भविष्य मे जनता की आवश्यकता और मनुष्यत्व की पूर्णता तक पहुचने की उमग उसके नित्य नूतन आविष्कार करने वाले मस्तिष्कों मे से इन समाचारपत्रों का कोई नया उपयोग करने की कौन सी तरकीब सोचे, यह तो भविष्य ही बतलायगा, यहाँ तो सूत्र रूप मे केवल इतना ही कहा जा सकता है, कि इनका कार्यक्षेत्र असीम है, अतः इनके लाभ भी असीम हैं। समाचार देने, किसी विषय पर विचार प्रगट कर देने, व्यापार सबधी सूचनाएँ देने, किसी नेता या सस्था का प्रचार करने, किसी सम्प्रदाय विशेष के सिद्धातों को लोकप्रिय बनाने, किसी अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाकर आंदोलन का श्रीगणेश करने मे ही इनके लाभों की इतिश्री नहीं हो जाती। विदेशों मे तो ये समाचारपत्र ही जनता के जीवन के साधनों के अधिकाश अभाव की पूर्ति करते हैं। इसका एक कारण यह भी है, कि वहाँ के लोग हमेशा यह सोचते रहते हैं, कि इनका वे ज्यादा से ज्यादा उपयोग किस प्रकार कर सकते हैं? जब हमारे देश के विचारकों की प्रवृत्ति इस ओर होगी, तब वे निश्चय ही इनसे नये नये काम लेकर, इनके नये नये लाभ ससार के सम्मुख रख सकेंगे।

भारतवर्ष

जिस देश में हम रहते हैं, उसके अनेक नाम है। उनमें से एक नाम है भारतवर्ष। प्राचीन काल में भरत एक बड़ा प्रतापी राजा हो गया है। उसी के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा है। 'भारत' शब्द का अर्थ होता है 'भरत का' और 'वर्ष' शब्द का अर्थ होता है 'देश'। इस प्रकार 'भारतवर्ष का अर्थ हुआ 'भरत का देश।' आर्यावर्त, भरतखण्ड, हिंदुस्तान, और इंडिया भी इस देश के नाम है।

भारतवर्ष के उत्तर में हिमालय पर्वत है। दक्षिण में लका-द्वीप और हिंद महासागर हैं। पूर्व में ब्रह्मा देश और बंगाल की खाड़ी हैं, और पश्चिम मे अफ़गानिस्तान, विलोचिस्तान और अरब सागर है। इसकी उत्तरी स्थल सीमा लगभग १६०० मील, पूर्व-पश्चिम की सीमा लगभग १२०० मील, पूर्वोत्तर सीमा लगभग ५०० मील, और समुद्री तट का विस्तार लगभग ३५०० मील है। इसका क्षेत्रफल १८०२६५७ वर्ग-मील है, इसमें ७०९९८३ वर्गमील देशी राज्यों का क्षेत्रफल भी सम्मिलित है। यहाँ की जनसंख्या ३५ करोड़ के लगभग

है। यह एशिया महाद्वीप के दक्षिण में है। इसकी प्राकृतिक बनावट कुछ ऐसी है, कि यह उत्तर, पूर्व, और पश्चिम में पहाड़ों के कारण तथा दक्षिण, पूर्व, और पश्चिम में समुद्रों के कारण दुनियाँ के दूसरे देशों से अलग हो गया है। अपनी अनेक विशेपताओं के कारण एशिया महाद्वीप का एक खण्ड मात्र होते हुए भी, यह एक महाद्वीप से कम नहीं है। १५वीं शताब्दी के पहले तक तो यह देश चारों ओर से पहाड़ों और समुद्रों से सुरक्षित था। केवल उत्तर-पश्चिम के पहाड़ों में कुछ दर्रों के जरिये ही विदेशी आक्रमणकारी भारत में घुस सके थे। १५वीं शताब्दी के बाद यूरोप के लोग समुद्री मार्ग से भारत में आये और तभी से इसकी दक्षिणी सीमा अरक्षित हो गई।

इसकी भौगोलिक विशेपताओं का इसके इतिहास पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इसमें व्योमचुम्बी पर्वतमालाएँ, बड़ी बड़ी नदियाँ—ऐसी बड़ी-बड़ी नदियाँ जिनमे बहुत दूर तक जहाज आ-जा सकते हैं—हरे-भरे खेत, चौरस मैदान, पठार और मरुभूमि हैं। कतिपय अन्य कारणों के साथ यह भी एक कारण है, कि यहाँ साल में छः ऋतुएँ होती हैं। यहाँ सब प्रकार के फल, फूल, और नाज पैदा होते हैं। यहाँ के भूगर्भ में लगभग सब प्रकार के खनिज पदार्थ मौजूद है। ऐसा मालूम होता है, मानों माता प्रकृति ने इसकी किसी पूर्व जन्म में की हुई तपस्याओं पर रीझ कर, अपनी लौकिक और अलौकिक विभूतियों का अधिकांश भाग इसीको दे डाला है। अपनी इन्हीं विशेपताओं के कारण यह ससार के अन्य देशों के आकर्पण की वस्तु रहा है। इसकी इन्हीं भौगोलिक विशेपताओं का इसकी प्रत्येक बात पर प्रभाव पड़ा है। नदियों के कारण

जमीन उपजाऊ रही। इससे लोगों को खाने-पीने को काफी मिलता रहा। जब लोगों का मन शांत रहता है, तभी ललित-कला, विज्ञान, और उच्च कोटि के साहित्य का प्रादुर्भाव होता है। यही हाल यहाँ हुआ। यह देश प्राचीन काल में चारों ओर से सुरक्षित रहा अतः दूसरे देशों से इसका सम्बन्ध विशेष रूप से न होने पाया। इसका परिणाम यह हुआ, कि यहाँ की सामाजिक संस्थाएँ दृढ़ हो गईं। बाहरी लोगों का यहाँ के लोगों पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव न पड़ा। मुसलमान और अंग्रेजों के सिवा सब जाति के लोगों को भारतीय आर्यों ने अपने में मिला लिया। इस देश की ऐसी ही सात्विक जल-वायु होने के कारण यहाँ बड़े-बड़े दार्शनिक व्यक्ति हुए।

भूमण्डल पर भारत की स्थिति भी बड़े मार्के की है। यह करीब करीब केन्द्र में स्थित है। अक्षांश-देशान्तर के विचार से भी यह ऐसे कटिबंध में है, जिसकी वजह से इसको सब तरह की सुविधाएँ प्राप्त हैं। एशिया का तो यह भाग ही है, पर यूरोप अफ्रीका और आस्ट्रेलिया महाद्वीप भी इससे दूर नहीं हैं। व्यापारिक दृष्टि से और भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की शक्ति के संतुलन को ठीक रखने में भारत का निकट भविष्य में महत्त्व पूर्ण स्थान होगा। अपनी इस केन्द्रवर्ती स्थिति के कारण ही अति-प्राचीन काल से संसार के बाजार भारत के हाथ में रहे हैं। भविष्य में भी स्वाधीन भारत इसका पूरा लाभ उठायेगा।

भारत में समय समय पर अनेक जातियाँ आईं और यहाँ बसनेवाली अन्य जातियों से लड़भिड़कर यहाँ बसती गईं। कई जातियाँ तो यहाँ की पहले की जातियों में ऐसी घुल-मिल गईं, कि अब उन्हें पहिचानना भी कठिन है।

ऐतिहासिक खोज से यह पता चला है, कि पाषाणकाल में यहाँ ऐसे लोग रहते थे, जो बहुत ही असभ्य थे। उत्तर पाषाण काल मे ये लोग कुछ कुछ सभ्य हो चले थे। उत्तर पाषाण काल के बाद यहाँ कुछ लोग ऐसे आए जो तांबे के अस्त्र शस्त्र बनाते थे। इनके बाद द्रविड़ जाति के लोग आये। द्रविड़ लोग पहले के निवासियों की अपेक्षा अधिक सभ्य थे। वे नाव बनाना जानते थे। वे व्यापार करना जानते थे। उनका अपना साहित्य था। और विवाह और विरासत के उनके अपने नियम थे।

जब द्रविड लोग भारत में अच्छी तरह फैलकर भली प्रकार बस गये और व्यापार आदि करने लगे, तब उन पर एक और जाति ने आक्रमण किया। इस जाति का नाम था आर्य। आर्य जाति के लोग लम्बे,गोरे, लम्बी नाकवाले और सुन्दर थे वे लोग संस्कृत भाषा बोलते थे। आर्यों के बाद यहाँ मगोल, शक, यूची,और हूण जाति के लोग आए और आर्यों में मिल गये। ईसा की आठवीं शताब्दी मे यहाँ मुसलमान आए, और ईसा की १५ वीं शताब्दी मे यूरोपियन आये। ये दोनों जातियाँ अभी तक आर्य जाति से संघर्ष कर रही हैं।

भारतीय सभ्यता सदा से अपने ढग की एक रही है। इस में समय समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। भारतीय सभ्यता बहुत व्यापक रही है। भारतीय सभ्यता ने मनुष्य जाति के विकास में पर्याप्त सहायता पहुँचाई है। उत्तम सभ्यता की कसौटी यही है, कि उसका अनुयायी प्रत्येक व्यक्ति 'सर्वभूत हिते रत.' रहता हुआ अपना जीवन यापन करे। अपने लिए तो सभी जीते हैं। अपने ही लिए जीना तो पशुता है। किसी

भी प्राचीन धर्मग्रन्थ को देख लीजिये, उसमें आपको यही बात देखने को मिलेगी। महाभारत में आपको मानव-जीवन की प्रत्येक समस्या पर विचार मिलेगा। पौराणिक काल में ब्राह्मण सभ्यता का प्राधान्य रहा, तथापि भारतीय सभ्यता का मूल तत्व उसमें भी अक्षुण्णरूप से है। बौद्धकालीन सभ्यता भी इस नियम का अपवाद नहीं है। यहाँ समय समय पर वैदिक संस्कृत, संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी आदि अनेक भाषाओं का प्राधान्य रहा। सब भाषाओं का अपना साहित्य था और इन्होंने भारतीय सभ्यता के विकास में पूरी सहायता पहुँचाई।

भारत में बहुत प्राचीन काल में गणतंत्रीय शासन पद्धति रही थी, ऐसा विद्वानों का मत है। यह बात सदिग्ध है, कि उस समय के गणतंत्रों का रूप आज-कल के पाश्चात्य गणतंत्रों का सा था या नहीं? नियंत्रित एकतंत्र शासनप्रणाली तो यहाँ मुसलमानों के आने तक रही? यदि ऐसा न होता तो छत्र-पति शिवाजी किस प्रकार अपनी नई शासन पद्धति जारी करते? भारतीयों ने समय समय पर परिस्थितियों के अनुसार साम्राज्यों की स्थापना की और सफलतापूर्वक उनका संचालन किया। मराठा साम्राज्य के पतन के साथ भारतीय शासनप्रणाली का अंत हो गया। अब यहाँ जो अभारतीय शासनप्रणाली चल रही है, उसे राजनीतिक बालकों की एक खिलवाड़ कहना ही उपयुक्त होगा।

वर्तमान भारत की हालत बड़ी विचित्र है। सामाजिक दशा में यह न तो ठेठ भारतीय है और न 'अपटूडेट' इंग्लिश। राजनीतिक दशा के विषय में यह कहना पर्याप्त है, कि

इसके एक एक कोने पर 'यूनियनजैक' गर्वोन्नत मस्तक से लहरा रहा है। वाणिज्य और व्यवसाय का यह हाल है, कि यह कच्चा माल बाहर भेजता है, और उसीको तैयार माल के रूप में कई गुने ज्यादा दाम देकर वापिस ले लेता है। यहाँ के एक तिहाई आदमी एक बार भोजन करके अपने दिन काटते हैं।

किन्तु यह स्थिति अब अधिक काल तक टिकेगी नहीं, ऐसे लक्षण प्रकट होने लगे हैं। गहरी और सुदीर्घ पराधीनता ने भारतवासियों को रूढ़ि और कुरीतियों का अनुयायी बना दिया था और उन्हें स्वतन्त्ररूप से सोचने के योग्य नहीं रहने दिया था, किन्तु वर्तमान युग की ज्ञान-प्रभा ने उनकी आँखे खोल दी हैं। वे अपनी हीन दशा को समझने लग गये हैं। आज भारत को को एक ही लौ लगी है और वह है सर्वस्व त्याग करके भी स्वाधीन होने की। उसके दृढ़ निश्चय को देखकर आशा होती है कि अदूर भविष्य में वह अवश्य स्वाधीन होकर रहेगा और शीघ्र ही दुनियाँ के समुन्नत देशों में शीर्षस्थान प्राप्त करेगा।

बीसवीं सदी की वैज्ञानिक उन्नति

बीसवीं सदी मे वैज्ञानिक उन्नति उस हद तक पहुँच गई है कि लोग उन्नति से डरने लगे हैं। यों तो अन्वेषण की ओर मनुष्य की बुद्धि सदा से लगी है, और वह कुछ न कुछ करता ही रहता है पर वास्तविक-वैज्ञानिक-जाग्रति के लक्षण सत्तरहवीं शताब्दी में प्रकट हुए हैं। तब से उत्तरोत्तर विज्ञान के चमत्कार बढ़ते ही गये हैं। जब विज्ञान की ओर यह प्रवृत्ति बढ़ी थी, जब वैज्ञानिक-युग का शैशवकाल था, तब तो किसी ने वर्तमान युग की विलक्षण उन्नति के स्वप्न भी न देखे होंगे। आरंभिक आविष्कारकों से अगर कोई आज के रेडियो और टेलीविजन की बात चलाता तो वह उसे अपनी भाषा में पागल करार देते। आज वही सब कुछ संभव हो गया है, और मनुष्य के उपयोग में आ रहा है। पर निश्चय ही आज का वैज्ञानिक-युग और आज के विचित्र-विचित्र आविष्कार, उस प्राचीन युग के, और उन छोटे-मोटे आविष्कारों के, ऋणी हैं, जिन्हें आज हम बच्चों का खेल समझते हैं। बीसवीं सदी का समुन्नत विज्ञान अपनी पिछली अनुन्नत सदियों से ही अनुप्राणित हुआ है, और उनका हृदय से कृतज्ञ है।

अगर हम बीसवीं सदी की समस्त वैज्ञानिक उन्नति का सिंहावलोकन करें और उसे संक्षेप में व्यक्त करना चाहें तो हम पिछले तेंतीस साल के समस्त अविष्कारों को दो भागों में विभक्त कर लेंगे। एक तो वे जिन्हें अविष्कार न कहकर अविष्कारों का संशोधन या परिवर्द्धन कहना उचित होगा, पर ये संशोधन इतने मौलिक और उपयोगी हैं कि वैज्ञानिक उन्नति के क्रम-विकास में इनका स्थान बड़े मार्के का है। इस लिए इन्हें हम छोड़ भी नहीं सकते। इनके अन्तर्गत वर्तमान मोटर, पनडुब्बी नावें, जेपलिन और राइट के वायुयान, तार और टेलीफोन, ग्रामोफोन आदि मुख्य हैं। अपनी मौलिकता और विचित्रता के कारण नूतन आविष्कारों में ही इनकी गिनती होती है। दूसरी श्रेणी के विशुद्ध अविष्कारों में बेतार का तार, रेडियोफोन, सिनेमेटोग्राफी और टेलीविजन आदि हैं। यों तो ये भी उसी वैज्ञानिक उन्नति के क्रम-विकास के फल हैं। यदि विद्युत् और ईथर का ज्ञान उन्नीसवीं शताब्दी में न होगया होता तो आज हम इन सब से वञ्चित ही रहते।

भौतिक शक्तियों का थोड़ा-बहुत परिचय तो प्राचीन काल से मनुष्य को है, पर वैज्ञानिक युग से पहले-पहल उसने उनसे काम लेना शुरु नहीं किया था। मनुष्य की अपनी शक्ति बहुत थोड़ी है। केवल अपनी शारीरिक शक्ति के द्वारा वह कुछ भी कर सकने में समर्थ न होता। जब से उसने भौतिक शक्तियों को वश में करने में सफलता प्राप्त की है तभी से नित्य नये आविष्कार उसके द्वारा संभव हो रहे हैं। ये भौतिक शक्तियाँ क्रमश इस प्रकार हैं,—वाष्प, गैस, विद्युत् और ईथर। समस्त वैज्ञानिक उन्नति का आधार ये ही चार शक्तियाँ हैं। इन्हीं से

कल-कारखाने, रेल जहाज, मोटर-वायुयान, टेलीग्राफ-टेलीफोन रेडियो और टेलीविजन आदि का अस्तित्व है। इन्हीं के द्वारा जड़-भौतिक पदार्थों मे गति उत्पन्न की जा सकती है, इन्हीं के द्वारा दूरदर्शन संभव हो सकता है, और इन्हीं के द्वारा दुनियाँ के एक छोर से दूसरे छोर तक शब्द को पहुँचाया जा सकता है तथा इन्हीं के द्वारा सुदूर भविष्य के लिए महापुरुषों की वाणी को सुरक्षित किया जा सकता है। वास्तव मे ये महाशक्तियाँ दैवी वरदान हैं, पर दुर्भाग्य से मनुष्य इन्हे बहुत देर में समझ पाया है। किन्तु जब से भी समझा है तब से वह जल, थल और आकाश का स्वामी बन बैठा है।

ऊपर हमने विज्ञान की जिस क्रमोन्नति का उल्लेख किया है, हाल का विज्ञान उससे भी आगे बढ़ रहा है। वैज्ञानिक-क्षेत्र में अब नित्य नई क्रान्तियाँ सुनने मे आती हैं। आइन्सटाइन का अपेक्षावाद, जगदीशचन्द्र वसु का जड पदार्थों में जीवन का अस्तित्व स्वीकार करना ऐसे ही सिद्धान्त हैं। यह सब देखते हुए भविष्य में विज्ञान की उन्नति की और भी आशा की जा सकती है।

यदि देखा जाय तो इस वैज्ञानिक उन्नति के सदुपयोग और दुरुपयोग दोनों ही हुए हैं। सदुपयोग के फल-स्वरूप अनेक लाभ हुए हैं। आज सारा संसार घनिष्ठता के सूत्र में सम्बद्ध होरहा है। आज हम बादलों के साथ विहार कर सकते हैं। आज हम घर के भीतर बैठे बैठे दुनियाँ की हलचलों का ज्ञान सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। प्राचीन-काल में एक रावण के पास पुष्पक विमान था, आज सर्वसाधारण के लिए हवाई जहाज तैयार रहते हैं। आज वायुवेग से चलनेवाली

जलतरणियाँ सबकी सेवा को प्रस्तुत हैं। आज हम इच्छा करते ही सहस्रों कोस की दूरी पर स्थित अपने आत्मीयजनों से बातचीत कर सकते हैं, और उनके सुख-दुख के समाचार अवगत हो सकते हैं। आज समुद्रतल की विचित्रताएँ, अभ्र-भेदी पर्वतों के दृश्य, ग्रह और उपग्रहों की गति का ज्ञान हमारी इच्छा के दास हो रहे हैं। दैवी शक्तियों पर अधिकार करके आज हम देवताओं के वैभव और विलास के स्वामी बन बैठे हैं। आकाश-पाताल सभी हमारे मे वश हैं।

दुरुपयोगों का विचार करें तो इनसे काफी क्षति भी हुई है, हो रही है और होने की सभावना है। गत महायुद्ध मे मनुष्य का महान वैज्ञानिक-अध्यवसाय रक्तपात मे काम आया। बेचारे एडिसन का टेलीग्राफ के अविष्कार के समय ससार का हितसाधन ही ध्येय रहा होगा, इसी प्रकार स्टीफेनसन का लक्ष्य भी वाष्पयन्त्र बनाते समय दुनियाँ का कल्याण ही रहा होगा। आविष्कारकों को शायद ही इस बात का ध्यान रहा हो कि उनके आविष्कार मानवजाति के नाश में भी प्रयुक्त किये जायेंगे। रेलों, जाहजों और हवाई जहाजों के द्वारा सेना और अस्त्र-शस्त्र सहज ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजे जा सकेंगे। प्रेस, टेलीग्राफ, टेलीफोन, रेडियोफोन आदि शत्रु जातियों के प्रति विषैला वातावरण तैयार करने में काम आयेंगे। यदि वे यह सब जानते तो शायद अनेकानेक कष्ट और असुविधाएँ सहन करके इन आविष्कारों मे अपने अमूल्य जीवन का उत्सर्ग न करते।

पिछले दिनों की वैज्ञानिक उन्नति की रफ्तार देखकर तो यही अनुमान होता है, कि निकट भविष्य में या तो हमारे

सामने प्रलय का दृश्य होगा या एक अद्भुत और अप्रत्याशित संसार में हम साँस ले रहे होंगे। यदि दुर्भाग्य से कोई युद्ध छिड़ गया और उसमें संसार की समस्त शक्तियाँ उतर आईं, तो दुनियाँ वैज्ञानिक-रुद्र का तांडवनृत्य अपनी आँखों से देखेगी और यदि संसार का कल्याण ही विधाता को इष्ट हुआ तो भी जीवन आज की अपेक्षा एक दम भिन्न होगा। मनुष्य को परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। बिजली उसके लिए समस्त कार्य कर दिया करेगी। खाना बनाना, नहलाना-धुलाना, कपड़े साफ करना, मकान की सफाई करना, जल गरम करना, मोटर चलाना, सब कुछ बिजली के ही द्वारा संभव हो जायगा। बल्कि आदमी जमीन पर चलेगा ही क्यों? मकानों में रहेगा ही क्यों? वह तो आकाश में सैर किया करेगा। पर्वत की चोटियों पर और महासागर के तल में आ जा सकेगा। उसके लिए दुनियाँ में विनोद ही एक वस्तु रह जायगी। मृत्यु से पहले किसी के वियोग में दुखी होने का अवसर ही नहीं आयगा। अपने स्नेही-संबंधी, प्रेमी और प्रेमिका का दर्शन, स्पर्श, उनसे वार्तालाप, सब कुछ कहीं भी रहने से हो सकेगा, फिर और चाहिए ही क्या? एक जीवन-मरण की पहेली को अभी तक कोई हल नहीं कर सका। विज्ञान का ध्यान तो इस ओर भी है, पर अभी तक अन्धकार में ही टटोलना पड़ रहा है। यदि इस ओर प्रकाश की एक किरण भी मिल गई तो एक महान क्रान्ति फिर होगी पर उसका अभी कोई निश्चय नहीं है। अभी तो दुनियाँ की आँखें वर्तमान उन्नति के प्रभाव की ओर ही लगी हुई हैं।

प्रकृति-सौंदर्य

प्रकृति-सौंदर्य कल्पना-निर्मित नहीं है। उसमें अनन्त का आनन्द पूर्णतया प्रतिबिंबित हो रहा है। तभी तो इस आनन्द में तल्लीन होकर मनुष्य अपने आपको भूल जाता है। अब तक अनन्तकाल से मनुष्य और प्रकृति का साथ चला आया है। प्रकृति की गोद में ही मानवजाति ने जन्म लिया था। मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति का आरम्भ प्रकृति के ही साहचर्य में हुआ था। कला और सौंदर्य की कल्पना काव्य और सगीत की रुचि, मनुष्य में प्रकृति ने ही पैदा की है। आदिम मनुष्य ने जब आँखें खोलकर इस नीलाकाश के नीचे देखा था, तो उसकी दृष्टि के सामने यही प्रकृति का विस्तृत एल्बम खुला हुआ पड़ा था। विधाता के इस महान और अनन्त चित्रपट के दर्शन करके मनुष्य विस्मय और आनन्द से गद्गद् हो गया था। तभी पहली बार उसने आदर और भक्ति के साथ अपने सृजनहार को मस्तक झुकाया था।

प्रकृति उसी परमपिता की अद्भुत चित्रकारी है। उस महान चित्रकार की कल्पना में ससार बसते हैं। तारों-भरी रात की शोभा उसकी तूलिका की साधारण रचना है। सूर्य और चन्द्र को चित्रित करने में उसे जरा भी प्रयास नहीं पड़ता। वह तूलिका उठाते ही अमर और सजीव कृतियों को पूरी करके रख देता है। किन्तु उस विराट् चित्रकार के दर्शन

करने के लिए क्या ये मानवी आँखें पर्याप्त हैं ? क्या इस सीमित दृष्टि के द्वारा हम उस निस्सीम की छवि की झाँकी पा सकते हैं ? क्या इन चर्म-चक्षुओं से उस दिव्य शरीरी का साक्षात्कार सभव है ? नहीं, तो फिर एक ही मार्ग है कि हम उसकी सृष्टि से उसका अन्दाज़ लगायें। सूर्य और आकाश उसके विराटरूप को बताने के लिए पर्याप्त हैं। अगाध अकूल महासागर उसके हृदय की शालीनता को व्यक्त करते हैं। हिममंडित शैल शिखर, जगमगाते तारागण, लहलहाता पृथ्वी-तल उसके क्रीड़ामय स्वभाव की परिभाषा हैं। मनुष्य अपने चारों ओर देखकर भी उस सर्वव्यापी की अनुभूति से वञ्चित कैसे रह सकता है ? प्रकृति के विशाल दर्पण में ही उस विराट की परछाईं झलकती है। इसी दर्पण में क्षुद्र मानव भी उसके पवित्र रूप का दर्शन पाकर कृतकृत्य हो सकता है।

प्रकृति ने न केवल मनुष्य को स्रष्टा की छवि के ही दर्शन कराये हैं, वरन् उसे पशुओं की कोटि से पृथक करके मनुष्य बना दिया है। प्रकृति मनुष्य की प्रथम शिक्षयित्री है। उसी ने उसे सौन्दर्य का, कला का, संगीत का और साहित्य का बोध कराया है। उसी ने उसकी कल्पना को सजीव और चलने-फिरने लायक बनाया है। स्रष्टा में पिता का स्नेह है, तो प्रकृति में माता की ममता है। स्रष्टा का काम तो मनुष्य का अव-तारण करके ही समाप्त हो गया, उसका लालन-पालन, उसकी देख-रेख, उसकी शिक्षा दीक्षा का भार तो प्रकृति माता पर ही पड़ा। उसी के साहचर्य और संसर्ग से मनुष्य में वर्तमान विशेषताओं का समावेश हुआ है।

इसी स्नेह-संबंध के कारण मनुष्य का हृदय प्रकृति से दूर

रहने पर अपने आपको निर्जीव, निस्सहाय और निराश्रित पाता है। नगरों के कोलाहल के बीच, कारखानों के वातावरण में, रोजगार और आजीविका के संघर्ष-क्षेत्र में उसका हृदय दुखी हो जाता है। गृहस्थी के जंजाल में वह ऊब उठता है। स्त्री-बच्चों के, बन्धु-बान्धवों के इर्ष्या-द्वेष में वह कोई रस नहीं पाता। जीवन की नीरसता दूर करने के लिए वह प्रकृति की शरण लेता है। जब दुख से, क्षोभ से, क्रोध से, घृणा से जी भर जाता है तो घरबार छोड़कर प्रकृति के संसर्ग में जाने से ही शान्ति मिलती है। सभ्यता ने प्रकृति और मनुष्य की उस प्राचीन घनिष्टता को नहीं रहने दिया है, इसी से सभ्य मनुष्य दुखी हैं। अनन्त वैभव का स्वामी होकर भी, ऊंचे-ऊँचे महलों में रहकर भी, अभूतपूर्व राजसुख भोगकर भी वह दीन है, दुखी है और प्रकृति की कृपा का भिखारी है।

आज भी उसका हृदय प्रसन्न होकर मोर की तरह तभी नाच उठता है जब वह घर से बाहर निकलकर सघन कान्तार में प्रवेश करता है। वन की शोभा कैसी सुखद, वहाँ की बयार कैसी स्वास्थ्यप्रद और छाया कैसी शीतल होती है? पर्वत के वक्षस्थल को चीर कर झरते हुए झरने का पानी चन्द्रमा की किरणों के घोल से ही बना हुआ मालूम पड़ता है। घर के आँगन में रोने-धोने के बीच धूप कैसी नीरस और दुखदायक प्रतीत होती है? वही धूप, वही सूर्य की किरणे, वन के खुले वातावरण में कितनी आनन्दप्रद होती हैं? सघन वृक्षों और लताओं से छन-छन कर, और पहाड़ी हवा के झोकों से बिखर-बिखर कर, जब वे शरीर पर पड़ती हैं तो अपूर्व उल्लास से हृदय भर जाता है।

मनुष्य ने जिसे वैभव नाम दे रक्खा है, उससे उसकी मनस्तुष्टि क्यों नहीं होती ? राजप्रासादों के सुखभोग में उसका जी शान्ति का अनुभव क्यों नहीं करता ? महलों के आनन्द-विलास से क्यों उसकी तृष्णा नहीं बुझती ? इसीलिए कि वह सब कृत्रिम है। मनुष्य ने सोने-चाँदी को झूठमूठ ही वैभव मान रक्खा है । विलास-सामग्रियों में अपने को डुबोकर वह भ्रान्तिवश शान्ति और सन्तोष की इच्छा करता है । हीरे और पन्नों से, रत्न और आभूषणों से अपने शरीर की शोभा बढ़ाने में सुख नहीं है । सच्चा सुख और यथार्थ आनन्द तो प्रकृति का सौंदर्य पान करने में है । चन्द्रमा से सुधा झरती है। बादलों से स्वास्थ्य बरसता है । हवा के साथ प्रफुल्लता बहती है। उपवन में चलकर फूलों के साथ रहो, तुम्हारा मन और मस्तिष्क भी फूल की तरह हो जायेंगे। इन्द्रधनुष में कितनी शोभा है, ओस की बूँदों में कितनी कांति है ? क्या रत्न और माणिक्य इस अकृत्रिम झलक की समता कर सकते हैं ? सरोवर की लहरें कितनी सुन्दर हैं, नदियों के उपकूल कितने सुहावने हैं ? पर्वत की असमतल उच्च भूमि में कितनी कला है ? आकाश से झरते हुए हिमकणों में कितनी कारीगरी है ? समुद्र कितना विशाल और स्वच्छ दर्पण है ? मरुभूमि की तपस्विनी सन्ध्या और उपवन की विलासवती रमणी उषा के रूपलावण्य की समता क्या विश्व में कोई नारी कर सकती है ? लताओं के कोमल किशलय, वृक्षों की चटकीली पत्तियाँ, सुगन्धित मञ्जरी, पीताभ पराग, झरता हुआ मकरन्द एक उदास और दुखी हृदय के लिए देवता के वरद-हस्त के समान हैं। प्रखर सूर्य की कांचन-वर्षा, स्निग्ध चन्द्र की रजत धवल

ज्योत्स्ना, पक्षिकुल का मधुर कलरव, दक्षिण पवन की संगीत-मय सनसन यदि सुन्दर और मनोमोहक नहीं हैं, तो दुनियाँ में क्या मनोमोहक है ? विज्ञान और कविता अनन्तकाल से प्रकृति के सौंदर्य और रहस्य के उद्घाटन में लगे हैं, पर उसकी चिरनूतनता उन्हें सदा ही विस्मित करती रहती है। मनुष्य की कलाओं का सौंदर्य तो समाधि के मुर्दे की भाँति है। उसमें सजीवता नहीं है। जो बन चुका सो बन चुका। रैफेल ने एक चित्र बनाया था। कालिदास ने एक काव्य लिखा था। डार्विन और हैकेल ने एक रहस्य का उद्घाटन किया था, पर उनकी कला मिश्रदेश के ममी (मुर्दे) की तरह सुरक्षित है। वह अमर रहेगी, पर मुर्दा बनकर। सजीव परिवर्तन तो केवल विधाता के प्रकृतिरूपी चित्रपट पर ही होता है। यहाँ आज वसन्त है, तो कल ग्रीष्म है। इस क्षण प्रभात है तो उस क्षण रात्रि का निविड़ अन्धकार है। यहाँ तृणरहित सैकत मरुभूमि है तो वहाँ 'सजला सफला शस्य श्यामला' भूमि है। इधर दानवों की तरह भयानक और नगी पर्वतमाला खड़ी है तो उधर शाल, देवदारु, चीड़, सनोवर और नाना प्रकार के वृक्षों से ढके हुए पहाड़ सिर उठाये हैं। एक ओर हिम-श्वेत शृंग आकाश को छूते हैं तो दूसरी ओर के सागर अतल की गहराई को नापते हैं। फिर भी मजा यह है कि वे सदा नूतन रहते हैं, एक क्षण के लिए भी उनमें मुर्दापन का असर नहीं होता। भव-भूति ने 'उत्तर राम चरित' में श्री रामचन्द्र जी के मुख से प्रकृति की इसी सजीवता का वर्णन कराया है। वे कहते हैं:—

सोहत हो प्रथम जहाँ पै सरि-स्रोत मंजु,
तहाँ अब विपुल पुलिन दरसावै है।

विरल हो प्रथम विपिन तहाँ घनो भयो,
जहाँ घनो तहाँ अब विरल दिखावै है ॥

किसी ने कहा है कि 'प्रकृति ईश्वर की कीर्ति का वर्णन तो सैंकड़ों मुखों से करती है पर उसकी दयालुता का परिचय नहीं देती।' पर ऐसा कहने वाले का ध्यान प्रकृति के सौन्दर्य की ओर ही था, प्रकृति की उपासना से जो अनेकानेक लाभ होते हैं उनकी तरफ से उसने आँखे मीच ली थीं। हम फिर से उन असंख्य लाभों को गिनाकर लेख का कलेवर बढ़ाना अनावश्यक समझते हैं। उसकी आवश्यकता भी नहीं है। हाँ इतना अवश्य कहेंगे कि क्षुद्र मानव का परित्राण प्रकृति की उपासना में ही है, उससे विमुख रहने पर उसका कल्याण नहीं हो सकता। माता का वात्सल्य और दुलार उसे तभी प्राप्त होगा जब वह माता के पार्श्व में, उसके अंचल की छाया के नीचे, रहेगा। दूर और विमुख रहने से वह सभ्य और सुसंस्कृत भले हो जाय, पर उसमें मशीन की जड़ता का समावेश हो जायगा। प्रकृति से दूर जाकर आज दुनियाँ उस अभाव को समझने लगी है। तभी तो पैरिस, लंदन और न्यूयार्क की अट्टालिकाओं के भीतर हड़बड़ी मची है और लोग कातर होकर पुकार रहे हैं, "Back to the country; back to the nature." अर्थात् प्रकृति की ओर मुड़ो, गाँवों की शरण लो।

कुछ वर्णनात्मक निबन्धों के खाके

आगे विद्यार्थियों की सुविधा के लिए कुछ वर्णनात्मक निबन्धो के खाके दिये जाते हैं, जिनकी सहायता से विद्यार्थी स्वयं निबन्ध लिखने का अच्छा अभ्यास कर सकते हैं

झरना

विशेष ऊँचाई से झरनेवाले प्राकृतिक जल-स्रोतों को झरना या प्रपात कहते है। पार्वतीय प्रदेशों में झरनों का दृश्य। भूमंडल के विशेष-विशेष झरने। हिम-निर्मित झरने। सरोवर-निर्मित झरने। बरसाती झरने।

झरनों का वर्णन। विशेष विशेष झरनों की ऊँचाई। झरनों के आस-पास का दृश्य। पर्वत की शोभावृद्धि में झरनों का स्थान। वन और घाटियों की रम्यता तथा झरना। झरने की रजत-धवल जल-राशि। आस-पास की हरयाली। पशु-पक्षियों का विचरण और कलरव। झरने के पतन का अविराम घर्घर शब्द—मन में भय का उद्रेक। मन में विचार, कल्पना और भावों का आलोड़न।

झरनों की उपयोगिता— बिजली तैयार की जाती है। जिससे प्रकाश मिलता है, बड़े-बड़े कल कारखाने चलते हैं। दुनियाँ के कल-कारखानों का उल्लेख जो झरनों से लाभ उठाते हैं। भारतवर्ष के ऐसे कल-कारखाने। निर्जल पहाड़ी भूभागों में झरनों के शीतल स्वच्छ जल की उपयोगिता। झरनों के प्रदेश प्रायः स्वास्थ्यकर होते हैं।

ताजमहल

शाहजहाँ की बेगम मुमताजमहल का समाधि-मन्दिर। अपनी अलौकिक कारीगरी के लिए जगत्प्रसिद्ध। आगरा में यमुना नदी के तट पर अवस्थित।

संगमरमर-निर्मित। सत्तरह वर्षों में बनकर समाप्त। प्रतिदिन २०००० मनुष्यों ने काम किया। संसार की सबसे सुन्दर और विस्मय-जनक इमारतों में से एक। उसकी पच्चीकारी के काम में सजीवता और स्वाभाविकता का भ्रम होना।

फाटक में प्रवेश करते ही उद्यान आरम्भ। उद्यान के बाद संगमरमर का विस्तृत चबूतरा। चबूतरे के चारों कोनों पर विशाल मीनारें। चबूतरे के मध्य में भव्य समाधिमन्दिर। समाधि मन्दिर के भीतर शिल्पकला का अपूर्व प्रदर्शन। इसी भवन के बीच में मुमताजमहल और शाहजहाँ की क़ब्रें।

चाँदनी रात में ताजमहल की छटा। मीनारों पर से आसपास और नदीतट का दृश्य।—ताजमहल शाहजहाँ के प्रेम का प्रतिरूप। एक ऐतिहासिक स्मृति का संरक्षक। दर्शन से मन में अनेक भावों का उद्रेक। ताजमहल और कवि।

संसार में अतुल कारीगरी का नमूना। कारीगरों की विशेषता। ताज के कारण संसार में भारत का नाम। बेल-बूटों में से बहुमूल्य पत्थरों का निकल जाना।

मधुमक्खी

अंडा देनेवाले परदार कीड़ों की सजातीय। मक्खी से मिलता-जुलता आकार, पर साधारण मक्खी से बहुत बड़ी। मुख्यतः स्पेन, भारत और मिस्र आदि देशों में पाई जाती है। छत्ते बनाकर झुंडों में रहती है। फूल-पत्तियों से मधु एकत्र करती है।

शरीर के मुख्य चार भाग—सिर, धड़, टाँगें और पंख। पंख पतले, और हलके काले। सिर और धड़ के बीच का भाग पतला। धड़ वर्तुलाकार। पेट में दो थैलियाँ, जिनमें चूसकर मधु भरती है। टाँगें छः। पीछे तीखा डंक। डंक विषैला। चिढ़ने पर डंक चुभा देती है। इसके दाँत भी होते हैं।

एक छत्ते में एक रानी होती है। रानी प्रतिदिन सौ अंडे देती है, उन का पालन करती और सब पर शासन करती है। कुछ मक्खे भी होते हैं। ये कुछ काम नहीं करते, सब काम मधुमक्खियाँ करती हैं। इनके काम मधुसंचय, छत्ता बनाना और पहरा देना है। दूसरे छत्ते की मक्खी किसी छत्ते में प्रवेश नहीं पा सकती। मधुमक्खी की श्रमशीलता। छत्ते की अद्भुत बनावट। छत्ते की कोठरियाँ मोम की बनी होती हैं। कोठरियों में मधुसंचय किया जाता है। वसन्त और ग्रीष्म में मधु-संचय करके वर्षा और शरद् में खाती हैं। मक्खियों की संख्या अधिक होजाने पर अन्यत्र नया छत्ता बनाती हैं।

इनसे मधु प्राप्त होता है। मोम मिलता है। मधु स्वादिष्ट और औषधिरूप से प्रयुक्त होता है। मधु के लिए कहीं कहीं मक्खियाँ पाली जाती हैं। मक्खियों के काटने से कष्ट।

मक्खियों की परिश्रमशीलता और सामाजिक जीवन से शिक्षा। मनुष्य का मक्खियों के प्रति कर्तव्य।

बरगद का वृक्ष

विशाल आकार का वृक्ष। चौड़े, मोटे और मज़बूत पत्ते। उष्ण और वर्षावाले प्रदेशों में उत्पत्ति। भारतवर्ष का अत्यन्त प्राचीन काल से प्रसिद्ध वृक्ष। वेद-कालीन भारतीय साहित्य में इसका उल्लेख।

अत्यन्त छोटे बीज से उत्पन्न। जहाँ कहीं बीज गिर पड़े वहीं उग

आता है। पुरानी इमारतों, कुओं,मन्दिरों और सरोवरों के आसपास इसका होना। आकार बढ़ने के साथ साथ बड़ी बड़ी शाखाओं से बरोहें लटक कर पृथ्वी में धँस जाना और मुख्य कांड को पुष्ट बनाना। दीर्घ-जीवन। मुख्य कांड के सूख जाने पर भी बरोहों का बहुत दिनों तक वृक्ष को जीवित रखना। प्रयाग का अक्षय वट, अन्य पुराने वट वृक्ष।

फल मीठा, पक्षी और बच्चों को रुचिकर। हाथी का इसके पत्तों को रुचि-पूर्वक खाना। सघन छाया, ग्रीष्मकाल में शीतल और शीतकाल में गर्म। यह वृक्ष पक्षिकुल का निवास-स्थान। पथिकों का आश्रय। बरातों का इसकी छायामें ठहरना, मेलों का लगना, ग्रामपंचायतों का होना। वर्षा, घाम और शीत तीनों से शरण आये हुओं की रक्षा करना। इसकी लकड़ी किसी विशेष काम की नहीं।

हिन्दुओं में बरगद के वृक्ष का सम्मान। वटवृक्ष का रोपना पुण्य-कार्य। इसकी पूजा और सम्मान का औचित्य।

व्योमयान

अन्तरिक्ष-यात्रा का साधन है।

आविष्कार और सुधार—पहले पहल गुब्बारे में बैठकर अंतरिक्ष की सैर, फ्रांस के गुब्बारे। १७८३ में सर्व प्रथम जीवधारियों का गुब्बारे से आकाश में उड़ना। ये यात्री बत्तख,मुर्गी और भेड़। अमेरिका के अनुभव। राइट साहब का दो पत्तीवाला व्योमयान, पिछला महायुद्ध और व्योमयान। पतंग के आकार के वायुयान, पंखेवाले वायुयान, एक पत्तीवाला, दो पत्तीवाला इत्यादि। जर्मनी के प्रसिद्ध ज़ेपलिन जहाज़। अमेरिका के जार्नह्वाइट का नवीन वायुयान जिसमें एंजिनों का सर्वथा त्याग।

एल्युमीनियम जैसी हल्की धातु से निर्मित। उड़ाने और उतारने के लिए उद्धारक यन्त्र का उपयोग। अग्रभाग में संचालक यन्त्र और चक्र आदि।

मध्य में बैठने का स्थान। अन्तरिक्ष में रखने के लिए पहले हाइड्रोजन गैस का उपयोग। उद्दीपनशील होने के कारण उसका त्याग और अब हेलियम नामक हलकी गैस का इस्तेमाल।

रेल से भी सस्ती, सुलभ और शीघ्र यात्रा। गमनागमन का सबसे गतिवान साधन। "वसुधैव कुटुम्बकम्" के भाव को व्यावहारिक रूप देने वाला। युद्धकाल में शत्रुओं पर गोलीवर्षा, शत्रुसेना की खबरें लाने में सहायक, नगरों और अगम्य किलों को बमवर्षा से विध्वंस करने वाला।

पुरातन समय में वायुयान। पौराणिक कथाओं में वायुयानों का उल्लेख। वायुयान के आविष्कार में मनुष्य की अन्तरिक्ष-विचरण वाली बलवती इच्छा सहायक।

प्रदर्शिनी

जहाँ कला-कौशल के नमूनों का प्रदर्शन किया जाता है, नूतन आविष्कार प्रकाश में लाये जाते हैं। विस्मयजनक और असाधारण प्राकृतिक वस्तुएँ भी दिखाई जाती हैं। प्राचीन प्रथा के मेले भी प्रदर्शिनी का ही रूप। आधुनिक ढंग की प्रथम प्रदर्शिनी पहले पहल इंगलैंड में सन् १८५१ में हुई। भारत में प्रदर्शिनियों का बहुत प्रचार होगया। यूरोपीय राष्ट्रों में भी प्रदर्शिनी का अधिक प्रचार।

कला-कौशल की वृद्धि और उन्नति में सहायक। कारीगरों और आविष्कारकों को नये-नये भाव मिलते हैं। उनके उत्साह की अभिवृद्धि, प्रतियोगिता की अभिलाषा। व्यापारवृद्धि में सहायक।

समुचित ढंग से वस्तुओं के प्रदर्शन का प्रबंध। कलाकारों को सम्मान और पारितोषिक देना। व्यवसायियों को आश्रय देना। आये हुए माल को अच्छे दामों पर ख़रीदकर कारीगरों और आविष्कारकों को प्रोत्साहन देना। सरकार के सहयोग की आवश्यकता।

भारतीय-प्रदर्शिनी और भारत-सरकार। सरकार की उदासीनता का प्रभाव। भारतीय प्रदर्शिनियों को सफल बनाने के अन्य उपाय। प्रदर्शिनियों-द्वारा भारतीय शिल्पवृद्धि की आशा।

उषाकाल

दिनरात का सब से सुहावना समय। नये दिन का जन्म-काल। रात के विश्राम के बाद सब कोई नये सुख का अनुभव करता है। शरीर में नूतन स्फूर्ति। चित्त में प्रसन्नता और उत्साह। शीतल, मन्द सुगन्धित-पवन का सचरण। पक्षियों का कलरव। प्रकृति की नूतन शोभा। आकाश की अद्भुत छटा। भगवद्-भक्तों के भाव-भरे भजन। वर्षाऋतु का उषाकाल। शरदऋतु का प्रभात। वसन्त का प्रभात। प्रभात के समय गाँवों की शोभा। प्रभात के समय उद्यान की शोभा। नदीतट का प्रभात। समुद्र किनारे प्रभात का दृश्य। पर्वत के शिखर पर प्रभात। नगरों का प्रभात— कल-कारखानों की विषैली गैस, एञ्जिनों का धुँआँ। भीड़ का कोलाहल इक्के-गाड़ियों की खड़खड़ाहट, फेरी वालों की कर्कश आवाज़।

उषाकाल में उठना। प्रातःकालीन सैर का स्वास्थ्य पर असर। प्रातःकाल का किया हुआ प्रत्येक कार्य सफल। अच्छा भोजन ही स्वास्थ के लिए पर्याप्त नहीं, उसके लिए शुद्ध वायु, चित्त की प्रसन्नता, दिल बहलाव, हँसी-खुशी, उत्साह आवश्यक। ब्राह्ममुहूर्त का जागरण और प्रभात-भ्रमण से इनकी प्राप्ति।

वैदिक साहित्य में उषा को देवी माना है। प्रत्येक काल, प्रत्येक देश, और प्रत्येक जाति के कवियों ने उषाकाल की महिमा और शोभा का दृश्य खींचा है। उषःसेवी ही शतायु होते हैं।

उद्यान

नाना प्रकार के वृक्ष। कोई फूलों से भरे हुए, कोई फलों से लदे हुए। सुन्दर सुन्दर पुष्पित-फलित लताएँ। भाँति-भाँति के पौधे। हरी-भरी क्यारियाँ। सघन कुञ्ज, फव्वारे, बावड़ियाँ और कुएँ। दूब का मख़-मली बिछौना। टहलने-घूमने के लिए प्रत्येक भाग में मार्ग। स्थान-स्थान पर विश्राम करने के लिए बड़कें, मंच आदि। मधुमक्खियों और भौंरों की गुंजार। पक्षियों का कलरव। प्रभातकाल की बूँदें। संध्या का दृश्य। गोधूलि की निस्तब्ध शान्ति। चाँदनी रात का दृश्य।

उपवन और मन बहलाव। उपवन और स्वास्थ्य। फूलों की सुगंधि से आत्मा की परितृप्ति। नगरों और गृहस्थी के जीवन के लिए उद्यान परमाव-श्यक। उद्यान में अध्ययन और मनन की सुविधा। दिमाग़ की ताज़गी। फल-फूलों की प्राप्ति। कोयल, मोर आदि पक्षियों का सुमधुर संगीत।

(Gardening) माली का काम बड़ा रोचक और परिश्रम तथा बुद्धि का है। अनुभव की वृद्धि होती है। सब को जानना चाहिए। प्रत्येक निवासस्थान के एक भाग में उद्यान हो।

शिमला

भारतवर्ष का प्रसिद्ध पार्वतीय नगर। हिमालय के मध्य में स्थित। अपनी प्राकृतिक शोभा तथा उत्तम जल-वायु के लिए प्रसिद्ध।

पूर्व में छोटा शिमला। पश्चिम में बालूगंज। उत्तर में सँजौली तथा दक्षिण में वन और घाटी।

शिमला एक पर्वत पर बसा है। यह पर्वत ऊँचे-ऊँचे देवदारु के वृक्षों से ढका है। इसीसे शिमला की शोभा बहुत बढ़ गई है। कहीं कहीं यहाँ सनोवर और चीढ़ के वृक्ष भी हैं।

शिमला भारत-सरकार की ग्रीष्मऋतु की राजधानी है। उस समय यहाँ बड़ी रौनक रहती है। शिमला पहुँचने के लिए कालका तक रेल की

बड़ी लाइन है। वहाँ से शिमला तक छोटी पहाड़ी लाइन। पहाड़ पर रेल का चक्करदार घुमाव, गुफाओं में से रेल का गुजरना। कालका से मोटर पर भी जाया जाता है। प्राकृतिक और नागरिक दोनों प्रकार की शोभा शिमला में देखी जा सकती है। ग्रीष्मकाल में शिमला में अत्यधिक शीत पड़ता है। भारत के भाग्य को बनाने बिगाड़नेवाले बहुत से कानून शिमला की भूमि में ही निर्मित होते हैं।

कालका से शिमला की पैदल यात्रा अत्यन्त रोचक। सुंदर दृश्य, वन्य और हिंसक पशुओं का अभाव। पहाड़ी लोग बड़े सीधे सादे। झूठ नहीं बोलते, चोरी नहीं करते, घरों में ताला नहीं लगाते। दूध-दही, नहीं बेचते, बड़े अतिथि सत्कार करने वाले। तमाखू का खूब प्रचार।

फूल

फूलों को वृक्ष-लताओं का पुत्र, तो फलों का पिता कहना उचित है। फलने से पूर्व प्राय सभी लता-वृक्ष फूलते हैं। कुछ वृक्ष फूलते नहीं, वे फलते भी नहीं। कुछ फलते तो हैं पर फूलते नहीं।

यौवन का विकास सबका सुहावना होता है। फूल भी लता-वृक्षों के यौवन के विकास हैं। फूल भी वृक्ष-लताओं की भाँति नाना रंग रूप और आकार प्रकार के होते हैं। कुछ फूल सुगन्धित होते हैं। कुछ देखने में अत्यन्त सुन्दर होते हैं, पर उनमें सुगन्धि नहीं होती। फूलों में स्निग्धता और कोमलता लता-वृक्षों के हरएक भाग से अधिक होती है। ईश्वर की बनाई हुई सबसे सुन्दर वस्तुओं में फूल मुख्य है।

फूल सब को अच्छे लगते हैं। पशु-पक्षी, कीट-पतंग, भौंरे-तितली तक फूलों के रंग-रूप और उनकी सुगन्धि से मस्त हो जाते हैं। आदमी फूलों को बहुत प्यार करता है। वह फूलों को अलभ्य मानता है, इसीसे देवपूजन में फूलों का बहुत महत्व है। फूलों से स्त्रियाँ और लड़कियाँ अपने शरीर सजाती हैं। सुगन्धित फूलों का इत्र खींचा जाता है। सुगन्धित

तेल भी फूलों से बनाया जाता है। फूलों से भरे हुए बगीचे में जाते ही दिमाग तरोताजा हो जाता है।

फूल के कई अंग होते हैं—पंखुरियाँ या दल, केशर, पराग, पत्तियों का आवरण तथा फल का मूलरूप। फूल लता या वृक्ष के वृन्त में संलग्न रहता है। फूल के झरने तक फल शीत-घाम सहने लायक हो जाता है।

दीपावली

कार्तिक मास की अमावस्या की रात को यह उत्सव होता है। दीपावली हिन्दुओं का जातीय त्योहार। घर घर बहुसंख्यक दीपकों का जलाना।

इसी दिन श्री रामचन्द्र जी ने चौदहवर्ष के वनवास के बाद अयोध्या में प्रवेश किया था। यह ख़रीफ की फसल का भी त्योहार है। वर्षा के कारण रुका हुआ व्यापार आदि भी इसी समय फिर चालू होता है।

घरों की सफाई, मरम्मत। उन्हें सजाना और लक्ष्मी-पूजन। मिठाई पकवान आदि बनाना और उत्सव मनाना। हवन आदि करना। दिवाली की रात को नगरों-बाज़ारों और घरों की शोभा दर्शनीय।

रोगोत्पादक कीटाणुओं का नाश। वायु का शुद्ध होना। उत्सव और रागरंग से मन में स्फूर्ति की उत्पत्ति। जातीय जीवन का अनुभव। लक्ष्मी-गणेश का पूजन करके सांसारिक वैभव और कल्याण की इच्छा करना और उसकी प्राप्ति में प्रयत्नशील होना।

जुए की कुरीति का कलंक। इतने पवित्र और सोद्देश्य त्योहार में जुए की प्रथा का चला जाना।

व्यापारियों का वर्षारम्भ। गत साल के हानिलाभ का विचार करके नूतन वर्ष नये उत्साह से कार्य करने की तैयारी। दिवाली विशेषकर वैश्यों का त्योहार है।

अभ्यास के लिए विषय

(१) वन की शोभा। (२) इन्द्रधनुष। (३) काश्मीर। (४) चन्द्रग्रहण। (५) हिमालय के शिखर पर। (६) मानसरोवर। (७) म्यूज़ियम। (८) चाँदनी रात। (९) संध्या काल। (१०) ग्रीष्म की दोपहरी। (११) दिल्ली का किला। (१२) समुद्रयात्रा। (१३) भारत के पशु पक्षी। (१४) गाने वाली चिड़ियाँ। (१५) सूर्य। (१६) हिमालय की शोभा। (१७) हरिद्वार का कुम्भमेला। (१८) विजयादशमी। (१९) ग्रीष्म ऋतु। (२०) धान की खेती। (२१) चाय के बगीचे। (२२) भूमण्डल। (२३) सिन्धुनद। (२४) प्लेग का प्रकोप। (२५) विद्युतरेलें। (२६) बैलगाड़ी। (२७) किसान। (२८) तीर्थयात्रा। (२९) भेड़ों का चरवाहा। (३०) शिशु। (३१) मौलसिरी। (३२) जलनय। (३३) कच्ची पक्की सड़कें। (३४) झोपड़ी। (३५) नीम की छाया। (३६) पीपल का वृक्ष। (३७) त्रिवेणी तट की शोभा। (३८) हिन्दुओं के त्योहार। (३९) समुद्रतट। (४०) अस्तगत सूर्य। (४१) धूम्रकेतु। (४२) आकाशगंगा। (४३) बिहार भूकम्प का एक दृश्य। (४४) लाहौर। (४५) रेशमी वस्त्र। (४६) भ्रमर। (४७) चींटी का जीवन। (४८) अंगूर की लताएँ। (४९) केसर की खेती। (५०) तितली।

—

आख्यानात्मक निबन्ध

श्रीकृष्ण

भगवान श्रीकृष्ण कब पैदा हुए थे, यह निश्चयपूर्वक बताना कठिन है। फिर भी इतिहासज्ञों का अनुमान है कि उनको हुए लगभग पाँच हजार वर्ष हुए हैं। उनका जन्म भारत के प्रसिद्ध क्षत्रियवंश, यदुकुल में, वसुदेव के घर मे हुआ था। उनकी माता शौरसेन के अधिपति कंस की बहन थीं। जिस समय श्रीकृष्ण का जन्म हुआ, उस समय, उनके माता-पिता कंस के यहाँ नजरबन्द थे। कारण यह था, कि किसी प्रकार कंस को यह विश्वास दिला दिया गया था कि उसकी मृत्यु देवकी के आठवें पुत्र के द्वारा होगी। इसीसे वह देवकी की हत्या करने को उद्यत हो गया, था, पर वसुदेव ने यह प्रतिज्ञा करके कि वे देवकी की संतान को पैदा होते ही कंस के अर्पण कर देंगे, देवकी को बचा लिया था। फलतः देवकी की सात संतानें, कंस द्वारा नष्ट की जा चुकी थीं। वसुदेव और देवकी दोनों को इससे बड़ा शोक था। इसीलिए श्रीकृष्ण के पैदा होते ही वसुदेव ने रातोंरात उन्हें मथुरा से गोकुल अपने परम मित्र नन्दमहर के यहाँ पहुँचा दिया। नन्द और उनकी स्त्री यशोदा ने उनके दुख से, दुखी होकर

कृष्ण को अपने यहाँ रख लिया और अपनी नवजात कन्या वसुदेव को दे दी। कंस कन्या को पाकर ही संतुष्ट हो गया, उसने कोई संदेह नहीं किया।

इस प्रकार बालक कृष्ण का लालन-पालन अहीर नन्द के घर में हुआ। कृष्ण का रंग साँवला था, इसीसे उनका नाम कृष्ण पड़ गया। लेकिन साँवले होने पर भी कृष्ण बड़े सुन्दर थे। यशोदा और नन्द ने उन्हें अपने ही पुत्र की तरह लाड़-प्यार के साथ पाला। कृष्ण के पिता वसुदेव की द्वितीय पत्नी रोहिणी भी गोकुल में ही रहती थीं। उनके उदर से बलराम का जन्म हुआ था। बलराम कृष्ण से अवस्था में बड़े थे। दोनों भाई साथ-साथ ही गोकुल गाँव में खेल-कूद कर बड़े हुए। ग्वाल-बाल ही उनके मित्र और सखा थे। उन्हीं के साथ वे आनन्द-विनोद करते और नन्द-यशोदा को प्रसन्न करते थे।

धीरे-धीरे कृष्ण बड़े हुए। तब वे माता यशोदा की आज्ञा लेकर, ग्वालों के लड़कों के साथ-साथ, वन में गायें चराने जाते थे। वन में दोनों भाई इधर से उधर अपने साथियों को लिये क्रीड़ा करते थे। घर से जो कुछ भोजन ले जाते थे उसी को दोपहरी के समय सब लोग खाते और जमुना का ठंढा पानी पीते थे। कृष्ण को बाँसुरी बजाने का बड़ा शौक था। हरे-भरे वृन्दावन में, कुंजों के नीचे बैठकर वे घंटों बाँसुरी बजा-बजाकर, अपने साथियों को प्रसन्न किया करते थे। धीरे धीरे बाँसुरी बजाने में उनको इतना कमाल हासिल हो गया कि स्त्री-पुरुष सभी उनकी बाँसुरी की मीठी तान सुनने के लिए उतावले रहते थे। यहाँ तक वर्णन है कि उनकी बाँसुरी के शब्द को गायें और बछड़े तक तल्लीनता से

सुनते और उसके स्वर से परिचित थे। संध्या समय जब वृन्दावन छोड़कर वे घर को आने लगते तो बाँसुरी बजाते ही गायें और बछड़े चारों ओर से उनकी ओर दौड़ आते। आज भी तो सर्कसों और तमाशों में बाजों पर जानवरों को ट्रेन किया जाता है। इसलिए कृष्ण के वंशी-वादन की करामात को कोरी कल्पना नहीं कहा जा सकता।

अवस्था के साथ-साथ कृष्ण में रूप-लावण्य का भी विकास हुआ। साथ साथ उनमें चंचलता और ढिठाई, जो बालकों में होनी स्वाभाविक है, वृद्धि पाती गई। चंचल, ढीठ, सुन्दर, चपल और होनहार बालक से बोलने को सबका जी चाहता है। फिर गोकुल तो कोई विशाल नगर न था उसमें बसनेवाले भी भिन्न भिन्न जातियों और पेशों के लोग न थे। सब ग्वाले थे, सब सम्बन्धी थे। उनमे आपस में आत्मीयता थी। इसलिए स्त्री-पुरुषों मे भी कृष्ण, अपनी अलौकिकता के कारण, उसी तरह प्रसिद्ध हुए जैसे अपने समवयस्कों में। सब लोग उनसे छेड़छाड़ करते थे, वे सबसे छेड़छाड़ करते थे। इस तरह मनोरंजन होता था। कभी-कभी कृष्ण अपने साथियों को लेकर किसी ग्वालिनी के घर में घुस जाते और उसका मक्खन और दही खा जाते। दूध-दही की उस समय वहाँ इतनी अधिकता थी कि उसकी हानि को मजाक ही समझा जाता था। दूध-दही की हानि से कोई अप्रसन्न न होता था। गोपियाँ तो उलटे उन लोगों को ऐसे अवसर दे दिया करती थीं। बच्चों की छीन-झपट में भी कभी-कभी बड़ों को एक अजीब ही आनन्द आता है। इसका अनुभव किसे नहीं होता!

खेल-कूद की अवस्था में ही कृष्ण के अंदर परदुख-कातरता और सेवा का भाव मौजूद था। बाद में यह भाव क्रमशः बढ़ता ही गया। अवस्था के साथ साथ उनमें शौर्य, वीर्य और दृढ़ता का भी समावेश हो गया। बुद्धि उनकी बड़ी तेज थी। अस्त्र संचालन का भी उन्हें बड़ा अभ्यास था। चक्र नामक एक घुमाकर चलाये जाने वाले अस्त्र का प्रयोग तो उनके जैसा भारत भर में कोई नहीं जानता था, और न बाद के इतिहास में वैसे किसी वीर का उल्लेख मिलता है। अर्जुन के गांडीव धनुष की तरह उनका सुदर्शन चक्र भी विख्यात है। कृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम गदा चलाने में अपना सानी नहीं रखते थे। कृष्ण जिन दिनों ब्रजभूमि में रहते थे। उस बीच ब्रज पर कई बार दैवी और मानवी आपत्तियाँ आईं। उन्होंने आँधी और तूफान में गाँव वालों की अपूर्व सेवा की। वर्षा में स्त्री-पुरुषों और ढोरों को बचाया। पुराणों में उनकी सेवा की ये घटनाएँ बड़े बड़े अलंकारों में वर्णन की गई हैं। रूपकों और प्रतिरूपकों द्वारा उन भयंकर विपदाओं को साकारता और सजीवता प्रदान की गई है। इस समय तक कृष्ण के बल वीर्य की चर्चा कंस के कानों तक पहुंची। धीरे-धीरे उसे, शायद, कृष्ण की ओर से कुछ सन्देह भी होने लगा। वसुदेव की दूसरी पत्नी और पुत्र गोकुल में ही रहते थे। इससे उसका संदेह कुछ और बढ़ा, लेकिन उसे कृष्ण की असलियत का निश्चय नहीं हुआ था। इसीलिए उसने उन्हें अपने दरबार में तलब किया।

अब तक कृष्ण किशोर हो चुके थे। वे अपने माता-पिता को भी कंस के बंधन से मुक्त करना चाहते थे। वे मथुरा गये।

यहाँ उन्होंने अपने मामा कस को मारा; और उसके बूढ़े पिता उग्रसेन को, जिन्हें दुष्ट कंस ने बन्दीगृह में डाल रक्खा था, वन्दीगृह से निकालकर पुनः सिंहासनारूढ़ किया। अपने माता-पिता के कष्टों को भी हरण किया। कंस के अत्याचार ने ही चारों ओर उनके सहायक पैदा कर दिये थे। इसी से काम अनायास पूर्ण हो गया। कृष्ण की ख्याति सारे भारत में फैल गई। दूसरे अत्याचारी राजा भी उनसे भयभीत हो उठे। उनमें मगध-नरेश जरासंध और चदेरी-नरेश शिशुपाल मुख्य थे।

जरासन्ध ने कंस का बदला लेने के लिए मथुरा पर चढ़ाई की। कृष्ण अपने कारण मथुरा पर आपत्ति आने देना नहीं चाहते थे इसलिए मथुरा छोड़कर वे भाग गये। जरासन्ध ने कृष्ण का पीछा किया। गोमंत पर्वत पर कृष्ण ने मगधनरेश की सेना का बहुत बुरी तरह से संहार किया। इस युद्ध के बाद कृष्ण ने करवीर-नरेश शृगाल को युद्ध में मारा। वहाँ भी उसका राज्य उन्होंने स्वयं नहीं लिया। उसके पुत्र को सिंहासन पर बिठा दिया। वहाँ से और आगे बढ़कर उन्होंने द्वारका की नींव डाली। इसके बाद उन्होंने पौंड्रक वासुदेव और नरकासुर आदि नरेशों का वध किया। अनेक राजाओं और राजकुमारियों को वन्दीगृह से छुड़ाया। पर कहीं का राज्य स्वयं हड़पने की नीति का अवलंबन नहीं किया। उनका धवल यश चारों तरफ भारतवर्ष में फैल गया। वे राजा के नाम से नहीं पर राजाओं के बनाने-बिगाड़नेवाले के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कृष्ण ने अपने जीवन में अन्तिम और महान प्रयास भारत को एक सार्वभौम सत्ता के नीचे लाने में किया। इसके

लिए उन्होंने पांडवों का पक्ष लिया। युधिष्ठिर ने इसी आशय से राजसूय यज्ञ किया था। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को ही इस महान पद के लिए चुनकर यह बात संसार के सम्मुख विघोषित कर दी कि सार्वभौम साम्राज्य जिसका वे स्वप्न देख रहे हैं केवल राजनीतिक भाव को ही नहीं लिये हुए है अपितु उसका प्राण धर्म है। उनके इस धर्म-संस्थापन के महान अनुष्ठान में प्रायः सबने योग दिया। यज्ञ के समारम्भ से पहले कितने ही युद्ध हुए। जरासन्ध का वध हुआ। यज्ञ में विघ्न उपस्थित करनेवाले शिशुपाल को अपने सुदर्शन चक्र से श्रीकृष्ण ने स्वयं मारा। इस तरह यज्ञ तो पूरा हुआ पर दुर्योधन के षड्यन्त्र में पड़कर पांडव अपना राजपाट खो बैठे और वनवासी हुए। द्वारका को शत्रुओं ने चारों ओर से घेर लिया। श्रीकृष्ण द्वारका के उद्धार में लग गये।

पाडवों के वनवास की अवधि पूरी होने पर, श्रीकृष्ण ने मध्यस्थता करके एक बार फिर भावी महासमर को टालने की चेष्टा की। किन्तु वे सफल न हुए। कुरुक्षेत्र में महाभारत-हुआ। यह एक ऐसा युद्ध था जिसमें भारत के कोने-कोने से क्षत्रिय संग्राम में आ डटे थे। अट्ठारह दिन की निरन्तर मारकाट में अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार हुआ। केवल दस आदमी शेष रहे। यद्यपि इस युद्ध में भारत का शौर्य-वीर्य नष्ट हो गया, पर अधर्म और स्वेच्छाचार का उठता हुआ ववंडर शांत हो गया। धर्म का साम्राज्य प्रतिष्ठित हुआ। सदियों के लिए भारत में सुख और शान्ति का प्रवेश हुआ।

इस प्रकार जब हम श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन पर एक नजर डालते हैं तो उन्हें सदा बड़े-बड़े कामों में संलग्न पाते हैं।

उनके जैसा कर्मवीर हमें दुनियाँ के इतिहास में कोई नहीं मिलता। उनके जीवन का एक-एक क्षण उनके महान उद्देश्य की पूर्ति में ही व्यय हुआ है। वे सुन्दरता में साक्षात् कामदेव थे। पराक्रम में दूसरे इन्द्र थे। राजनीति और विचक्षणता में चाणक्य थे। वक्तृत्वकला में वे बृहस्पति थे। समाजधर्म, राजधर्म, क्षात्रधर्म के मर्म को उनके बराबर कौन समझता था? उन्होंने अपने जीवन में गौएँ चराने से लेकर धर्म-संस्थापन, साम्राज्यसंस्थापन और धर्मोपदेष्टा तक के महान कार्य कर दिखाये थे। उन्होंने आर्य जाति के सामने कला का, सौन्दर्य का, प्रेम का, उदारता का, दया का, पराक्रम का, निस्पृहता का, राजधर्म का, कर्मयोग का और न जाने किस किस का आदर्श उपस्थित किया। उनके श्रीमुख से प्रसूत हुई 'श्रीमद्भगवद्गीता' की पंक्तियाँ आज भी संसार को पथ-प्रदर्शन कर रही हैं। चार-पाँच सहस्र वर्ष से अब तक जब-जब किसी को समाज-व्यवस्था में, राज्य-व्यवस्था में, धर्म-नीति में, अथवा जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में कभी किसी कठिनाई का बोध हुआ है, तब तब इसी महान ग्रंथ ने उसका परितोष और समाधान किया है।

इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र ने देश, जाति और मानवसमाज की अथक सेवा सारे जीवन भर की। कभी एक क्षण के लिए उन्होंने विश्राम नहीं किया। चरित्र की दिव्यता के कारण ही वे बाद में हिन्दुओं द्वारा ईश्वर के अवतार माने गये और उनकी अब तक पूजा और उपासना होती है। हिन्दुओं के आधे से अधिक साहित्य और कला के क्षेत्र में इन्हीं लीला पुरुषोत्तम के ललित चरित्रों का चित्रण है।

कहा जाता है कि महाभारत के युद्ध और यादवों के पतन के बाद कृष्ण का चित्त द्वारका में नहीं लगा। एक सघन वन में वृक्ष के नीचे जब वे लेटे हुए थे, तो उनके पैर में एक बहेलिये का बाण आकर लगा। उसीसे उनकी मृत्यु हो गई। लेकिन गीता के अनुसार उनका पंचभौतिक शरीर ही नहीं रहा, पर वे तो सदा अमर हैं, और फिर हिन्दू-जाति ने तो उन्हें अपने हृदय में रख छोड़ा है, उसके लिए तो वे सदा अमर हैं।

प्रह्लादभक्त

बहुत पुराने समय में एक दैत्य रहता था। उसका नाम था हिरण्यकशिपु। वह बड़ा वीर था। वह शिव का तो था भक्त और विष्णु का था शत्रु। उसने अपने सारे राज्य में यह ढिंढोरा पिटवा दिया था, कि कोई भी विष्णु की पूजा न करे। वह विष्णु का यहाँ तक शत्रु हो गया था, कि पूजा करना तो रहा दूर, कोई विष्णु का नाम भी ले लेता तो वह जल-भुन-कर राख हो जाता और उसे बड़ा कड़ा दंड देता था।

उसका एक लड़का था। उसका नाम था प्रह्लाद। प्रह्लाद भगवान विष्णु का उतना ही भक्त था, जितना उसका पिता उसका शत्रु। बचपन से ही प्रह्लाद के रंग-ढंग कुछ ऐसे थे, जिन से मालूम होता था, कि वह अपने बाप की तरह नहीं होगा। जब उसके साथी इधर-उधर कूदते-फाँदते, चीखते-चिल्लाते, खाते-पीते, वह एकांत में बैठा बैठा कुछ सोचा करता।

एक दिन रास्ते में प्रह्लाद को नारद मुनि मिल गये। प्रह्लाद ने नारद मुनि से पूछा, कि महाराज! इस दुनियाँ को किसने बनाया? इन सूरज, चाँद और तारों को किसने बनाया? इन मनोहर पेड़ों, फल-फूलों और परिंदों को किसने बनाया? नारदजी ने इन प्रश्नों के उत्तर में कहा, कि बेटा यह सारी

दुनियाँ भगवान की है। उन्हींने इसको बनाया है। वे ही इसकी रक्षा करते हैं। तुम उन्हींका ध्यान करो। जब वे तुम पर प्रसन्न होंगे, तो तुम्हें दर्शन देंगे। उस समय तुम ये सब बातें समझ सकोगे। तब से प्रह्लाद अपना सारा समय भगवान की पूजा और ध्यान में लगाने लगा। वह और भी गंभीर हो गया।

प्रह्लाद पाँच वर्ष का हुआ, तो उसके पिता का इरादा उसे गुरुकुल में पढ़ने को भेजने का हुआ। दैत्यों के कुलगुरु का नाम था शुक्राचार्य। पर जब प्रह्लाद पढ़ने के योग्य हुआ, शुक्राचार्य तपस्या करने के लिए हिमालय चले गये। उनके लौटने का कोई निश्चित समय नहीं था। हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को शीघ्र ही पढ़ने के सिलसिले में डाल देना चाहता था, क्यों कि वह जानता था, कि अधिक समय तक उसको पढ़ने न बैठाने का परिणाम अच्छा नहीं होगा। इसलिए उसने निश्चय किया, कि प्रह्लाद को शुक्राचार्य के पण्ड और अमर्क नामक लड़कों के पास पढ़ने को भेज दिया जाय।

एक दिन अच्छे मुहूर्त में हिरण्यकशिपु ने अपने विचार को असली जामा पहना दिया—उसने प्रह्लाद को शुक्राचार्य के पुत्रों के पास पढ़ने भेज दिया। वह चाहता था, कि उसका पुत्र उससे भी अधिक कट्टर विष्णु-द्रोही हो। यह बात उसने प्रह्लाद को सौंपते समय, गुरुओं को समझा भी दी थी। उसने उन्हें यहाँ तक कह दिया था, कि अगर उनकी शिक्षा के प्रभाव से, प्रह्लाद देवता और ब्राह्मणों को खूब सताने लगा, तो वह उन्हें मुँह-माँगा पुरस्कार देगा। गुरुओं ने भी राजा की यह आज्ञा स्वीकार कर ली।

प्रह्लाद ने पढ़ना शुरू किया। उसकी बुद्धि बहुत अच्छी थी। उसने सारे स्वर वर्णों को एक बार देखकर ही पहिचान लिया। फिर व्यंजन पढ़ने की बारी आई। व्यजनों के प्रथम वर्ण 'क' को देखते ही उसका ध्यान 'क' से बनने वाले विष्णु के नाम की ओर चला गया। उसके हृदय में भक्ति का सागर उमड़ पड़ा। उसकी आँखों में आनन्दाश्रु भर आये। उसकी यह हालत देखकर सब हँसने लगे। उन्होंने कहा 'क' को देखकर ही यह तो रो पड़ा, ये आगे कैसे पढ़ेगा। गुरुओं ने लड़कों को डरा-धमकाकर चुप किया, और प्रह्लाद से कहा 'बेटा, देखो तुम्हारे साथी तुम पर हँसते हैं।' प्रह्लाद इस बार ताली बजाकर जोर-जोर से कृष्ण का नाम रटने लगा।

प्रह्लाद के मुँह से विष्णु का नाम सुनते ही दोनों गुरुओं के देवता कूच कर गये। उन्होंने समझा कि राजा के आगे अब हमारी खैर नहीं। राजा अब हम पर बड़ा अत्याचार करेगा मजा यह हुआ, कि भगवान के प्रताप से प्रह्लाद के सब सहपाठी भी उसके साथ साथ कृष्ण का नाम रटने लगे। गुरुओं ने सोचा यह तो राजा-रानी का प्यारा बेटा है। सम्भव है, इसे माफ़ कर दें। पर हमारी और दूसरे बच्चों की क्या हालत होगी? गुरुओं ने उसे खूब पीटा। उन्होंने लड़कों को भी खूब पीटा पर न तो प्रह्लाद ही चुप हुआ और न लड़के ही।

इस पर उन्होंने इन सब बातों की शिकायत राजा से कर दी। राजा यह खबर पाते ही आगबबूला हो गया। वह पहले गुरुओं पर सारा दोष मढ़ने लगा। पर जब गुरुओं ने कहा, कि हम तो बिलकुल निर्दोष हैं। तब उसने प्रह्लाद को बुलाकर पूछा, कि तुमने गुरुकुल में क्या पढ़ा? उसने अपने

पिता को विष्णु भक्ति का महत्व समझाया। उसने कहा संसार में राम नाम ही सार है।

अब तो राजा के क्रोध का पारावार न रहा। उसने आज्ञा दी, कि प्रह्लाद का सिर काट दिया जाय। जल्लाद उसे श्मशान भूमि में ले गये, और जैसे ही उन्होंने उसके सिर पर तलवार का वार किया, कि वह टूट गई। फिर नई तलवारें मँगाई गईं वे भी उसकी देह में लगते ही टूट गईं। राजा ने प्रह्लाद से पूछा, कि बेटा तुम कैसे बचे? उसने कहा—मुझे राम ने बचाया।

राजा को इतना क्रोध आ रहा था, कि वह पागल सा हो गया था। उसने आज्ञा दी, कि प्रह्लाद को अँधेरे जेलखाने में बंद करदो। वह कैद कर दिया गया। मंत्रियों ने राजा को सलाह दी, कि उसे जहर दिया जाय। उसे जहर के लड्डू दिये गये। किंतु उस पर विष के लड्डुओं का भी कुछ असर न हुआ। बल्कि भगवान की कृपा से लड्डू खाने के बाद प्रह्लाद की देह में ताकत खूब बढ़ गई। राजा को पता लगा, कि प्रह्लाद जहर के लड्डू खाकर भी मरा नहीं। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने प्रह्लाद को बहुत समझाया, और कहा कि बेटा विष्णु का घृणित नाम लेना छोड़ दो। प्रह्लाद ने कहा, पिताजी विष्णु तो शरणागतवत्सल, भक्त प्रतिपाल, और विश्वनियता हैं। उन्हींका नाम सत्य और सार्थक है।

राजा फिर गुस्से से जल उठा। उसने कहा इसे हाथी के के पैरों तले डाल दो। राजा के सेवकों ने ऐसा ही किया। प्रह्लाद के हाथ पैर बाँधकर उसे एक पागल हाथी के सामने छोड़ दिया गया। हाथी झपटा, पर हाथी ने जैसे ही नीचे

देखा, कि उसका गुस्सा ठंढा पड़ गया। हाथी ने प्रह्लाद को सूँड़ से उठाकर अपनी पीठ पर बैठा लिया। लोगों को आश्चर्य हुआ। राजा ने प्रह्लाद से पूछा कि तुमने हाथी को कैसे वश में किया? प्रह्लाद ने उत्तर दिया, कि हरि की सच्ची भक्ति के बल से।

राजा गुस्से का मारा दाँत पीसने लगा। उसे इतना ज्यादा गुस्सा आया, कि वह होठ चबाने लगा। मंत्रियों ने सलाह दी, कि प्रह्लाद को जहरीले साँपों से कटा दिया जाय। बस कहने भर की देर थी। एक दिन प्रह्लाद के कमरे में रात को साँप छोड़ दिये गये। प्रह्लाद अपने ध्यान मे मग्न रहा। साँप धीरे-धीरे बाहर चले गये। राजा ने पूछा, कि बेटा अब को वार कैसे बचे? प्रह्लाद ने उत्तर दिया, कि राम की कृपा से।

राजा की क्रोधाग्नि में घी की आहुति पड़ी। उसी समय उसने आज्ञा दी, कि इसके हाथ पैर मजबूती से कसकर बाँध दो, और पहाड़ की चोटी पर से ढकेल दो। ऐसा ही किया गया। अब की वार लोगों ने समझा, कि शायद प्रह्लाद मर जायगा। पर लोगों ने नीचे जाकर देखा, कि प्रह्लाद एक सुंदर स्त्री की गोद में बैठे बैठे राम नाम जप रहे हैं। यह देखकर राजा का क्रोध और बढ़ा।

उसने इस वार प्रह्लाद को आग में जलाने का इरादा किया। एक बड़ा भारी अग्निकुंड बनाया गया। प्रह्लाद की एक भुआ थी, उसका नाम था होलिका। उसे वर था कि आग मे न जलेगी। मंत्रियों ने सलाह दी, कि यदि होलिका प्रह्लाद को गोद में लेकर आग में जा बैठेगी, तो वह तो जल जायगा, और यह न ज़लेगी। इसी विश्वास के कारण राजा प्रसन्न हो

रहा था। लेकिन, लोगों ने देखा, कि आग की ऊँची-ऊँची लपटों में बैठा हुआ प्रह्लाद आनन्द से भगवान का नाम ले रहा है।

इसके बाद और अनेक प्रकार से उस बालक को मारने का यत्न किया गया पर कुछ न हुआ। अन्त में एक विराट सभा की गई। सभा में एक ऊँचे सिंहासन पर राजा बैठा। चारों ओर राज्य के सब अफसर, सेठ-साहूकार आदि बैठे। प्रह्लाद से राजा ने पूछा "तुम जो कहते हो, कि मैं हरि नाम के प्रताप से बच गया, तो क्या तुम्हारा हरि सब जगह मौजूद है?"

प्रह्लाद ने कहा—हाँ!

राजा ने पूछा—क्या इस सभा में भी तुम्हारा राम मौजूद है?

प्रह्लाद ने कहा—अवश्य!

राजा ने पूछा—क्या, इस संगमरमर के खंभे में भी तुम्हारा राम है?

प्रह्लाद ने कहा—हाँ, है, इस खंभे में भी मेरा राम है।

राजा अब अपना क्रोध अधिक न रोक सका। उसने गदा मारकर खंभे को तोड़ दिया। खंभे के टूटने पर एक ऐसी मूर्ति प्रकट हुई जिसका सिर तो शेर का और धड़ मनुष्य का था। राजा ने उस पर गदा से प्रहार किया। उसने उसकी गदा पकड़ ली। बड़ी देर तक दोनों में लड़ाई हुई। फिर उस मूर्ति ने, जिसे पुराने समय के इतिहास-लेखकों ने, नृसिंह भगवान के नाम से सम्बोधित किया है, मकान की चौखट पर जाँघ रख कर अपने तेज नखों से राजा का पेट फाड़ डाला, और प्रह्लाद

से कहा —बेटा वर माँग। प्रह्लाद ने वर माँगा—'भगवान आपके चरणों में मेरी भक्ति सदा बनी रहे।' भगवान नृसिंह ने 'तथास्तु' कहकर उसे राजगद्दी पर बैठाया, और अन्तर्धान हो गये।

प्रह्लाद ने राजा होकर बहुत बरसों तक राज्य किया।

प्रह्लाद की इस कथा से हमें यह शिक्षा मिलती है, कि मनुष्य एक बार अच्छी तरह सोच समझकर जिस काम को प्रारम्भ करे, उसे लाख आफत आने पर भी अधूरा न छोड़े। जो आदमी अपने ध्येय पर दृढ़ रहता है, उसकी मदद भगवान भी करते हैं। प्रह्लाद अपने उसूल पर डटा रहा, तो आग, जल, पहाड़, जहरीले साँप, और जहर भी उसका कुछ न बिगाड़ सके। संसार मे सभी पैदा होते है, पर मनुष्य के काय ही उसे दूसरों की दृष्टि मे साधारण या असाधारण बना देते हैं। प्रह्लाद यदि भगवान का भक्त न होता, और भगवान की, भक्ति के नाम पर उसने तकलीफें न उठाई होतीं, तो आज उसका नाम हरएक आदमी की जबान पर न होता। आज कई लोग अपने बच्चों का नाम 'प्रह्लाद' रखने में बड़ा गौरव महसूस करते हैं। इन घटनाओं को हुए हजारों साल हो गये, पर आज तक हम लोग प्रह्लाद का नाम श्रद्धा-पूर्वक लेते हैं और लेते रहेंगे।

शिवाजी

शिवाजी मातृवंश और पितृवंश दोनों ओर से राजपूत थे। पितृपक्ष से वे उस प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए थे जिसमें बड़े-बड़े शूरवीर और पराक्रमी पुरुष पैदा हुए थे और जो वंश सदियों से भारत की स्वाधीनता के लिए अपना रक्त बहाता आया था, जिस वंश ने कभी मुसलमानों के सामने अपना मस्तक नहीं झुकाया, जिसने कभी उन से सम्बन्ध करने की बात नहीं सोची। हमारा मतलब उसी सीसौदिया कुल से है जिसमें बाप्पा रावल, राणा साँगा और महाराणा प्रतापसिंह जैसे धीर-वीर नररत्नों ने जन्म लिया था, और जिसकी ध्वजा अब भी चित्तौड़ के किले पर फहराती है यद्यपि मुग़ल और पठान, दिल्ली और आगरा आज अपने वैभव को खो बैठे हैं। मातृपक्ष की ओर से भी शिवाजी का संबंध उस प्राचीन यादव वंश से था, जिसकी राजधानी कभी देवलगढ़ थी। यद्यपि समय के उलट-फेर के कारण राज्य की बागडोर उसके हाथ से निकल गई थी फिर भी वह वंश दक्षिण के तत्कालीन राजपूत-वंशों में प्रतिष्ठित और उच्च गिना जाता था।

शिवाजी के पिता का नाम शाहजी था। शाहजी बीजापुर दरबार की नौकरी में थे। उनका विवाह पराक्रमी और प्रतिष्ठित जागीरदार यादवराव की कन्या जीजीबाई से हुआ था। इन्हीं जीजाबाई के गर्भ से सन् १६२७ में पूना के पास शिवनेर के किले में शिवाजी का जन्म हुआ। जिस समय शिवाजी का जन्म हुआ था उस समय शाहजी भोंसला लड़ाई के मैदान में डटे हुए थे। सबसे विचित्र बात यह थी कि एक सेना की तरफ से शाहजी थे और दूसरी ओर से उनके श्वसुर यादवराय लड़ रहे थे। इससे श्वसुर और दामाद में मनोमालिन्य बढ़ता गया और शाहजी ने अपना दूसरा विवाह कर लिया। शिवाजी और जीजीबाई यादवराव के यहाँ बन्दी होगये। शिवाजी की माता ने बड़ी सावधानी से इस समय बच्चे की रक्षा का प्रबंध किया। बाद में शाहजी और यादवराव में मेल होगया। शाहजी ने शिवाजी का विवाह कर दिया और आप कर्नाटक युद्ध में लड़ने के लिए चले गये। शिवाजी अपनी माता के साथ पूना में ही रहे।

शाहजी ने शिवाजी की देख-रेख और शिक्षा का भार अपने विश्वासपात्र दादाजी कोंडदेव को सौंप दिया। दादाजी बड़े योग्य और ईमानदार आदमी थे। शाहजी की पूना की जागीर का प्रबंध उन्हींके पास था। उन्होंने शिवाजी को उत्तमोत्तम शिक्षा दी। जागीर के प्रबंध मे भी उन्होंने शिवाजी से काम लेना आरम्भ कर दिया। उस समय मराठा जाति मे विद्या की ओर बहुत रुचि नहीं थी तो भी दादाजी ने शिवाजी को, जो बन पड़ा पढ़ाया-लिखाया। युद्ध-विद्या में उन्हें खूब अभ्यास कराया गया। घोड़े की सवारी में तो वे अद्वितीय

होगये। इसके अतिरिक्त निशाना मारने, तलवार का प्रयोग करने और भाला चलाने में भी उन्होंने शीघ्र ही कौशल प्राप्त करलिया। दादाजी की तत्परता और योग्यता ने शिवाजी के चरित्र को खूब बलवान बना दिया। समय को देखते हुए जिन जिन बातों की आवश्यकता थी उन उन में दादाजी ने उन्हें भली प्रकार प्रवीण और कुशल बना दिया। जागीर प्रबंध में भाग लेने के कारण वे अपनी अशिक्षित, लड़ाकू पर दृढ़ मावली प्रजा के संसर्ग में आते जाते रहे और अपने निर्मल मधुर स्वभाव और सहज उदारता से उन्होंने मावलियों का हृदय जीत लिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि अन्त समय तक इस वफादार प्रजा ने उनका प्राणपण से साथ दिया।

शिवाजी के चरित्र-निर्माण में उनकी माता जीजीबाई का भी विशेष हाथ था। वे बड़ी सुशिक्षिता थीं। उन्होंने शिवाजी में धार्मिक संस्कारों की जड़ जमाई। वे बचपन से ही बालक शिवाजी को हिन्दुओं की वीरता और भक्तिभाव की कहानियाँ सुनाया करती थीं। शिवाजी को कथा सुनने का बहुत शौक था। अनेक वीर और महापुरुषों के जीवन-वृत्तान्त उन्होंने सुन रक्खे थे। इनसे उनका चरित्र और भी दृढ़ और निर्मल होगया। उनके जीवन में आगे चलकर जो सदाचार की उज्ज्वल झलक दिखाई पड़ती है वह इसी सुशिक्षा का परिणाम था।

बचपन में प्राचीन वीर पुरुषों की जो कहानियाँ शिवाजी ने सुन रक्खी थीं, उससे उन्हें पराक्रमी योद्धा बनने की अभिलाषा हुई। उस समय महाराष्ट्र जीवन में एक नवीन लहर चल रही थी और जातीयता का भाव उमड़ रहा था।

इस नवीन जीवन के प्रवर्तकों में से समर्थ गुरु रामदास भी थे। शिवाजी ने इनको अपना गुरु माना था। इनकी धार्मिक जातीय जोश से भरी हुई शिक्षाओं का भी शिवाजी पर गहरा असर पड़ा था। धीरे-धीरे शिवाजी की महत्वकाँक्षा वहुत वढ़ गई और उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे कुछ करें। फलतः १९ वर्ष की ही अवस्था में उन्होंने बीजापुर-नरेश के पूना जिला क अन्तर्गत कुछ किलों को जीत लिया। इस पर बीजापुर दरवार ने शाहजी को लिखा कि वे अपने वेटे को रोकें। शाहजी ने दादा जी कोंडदेव लिखा कि शिवाजी को रोक दिया जाय। यह सुनकर शिवाजी को वड़ी चिन्ता हुई। वे धर्मसंकट में पड़ गय। एक ओर तो जाति और धर्म के उद्धार का शुभ संकल्प था, दूसरी ओर पूज्य पिता की आज्ञा। अन्त में उन्होंने अपनी माता से परामर्श करने के उपरान्त गौ, ब्राह्मण और धर्म की सेवा को ही श्रेयस्कर ठहराया।

दादाजी कोंडदेव ने शाहजी की आज्ञानुसार शिवाजी को समझाया तो अवश्य, पर उनकी आन्तरिक सम्मति शिवाजी के कार्यों के पूरी तरह पक्ष में थी। इसके कुछ ही दिन वाद दादाजी का शरीरान्त हुआ। उससे पहले उन्होंने इसी तरह का उपदेश शिवाजी को दिया था। शिवाजी ने भी पितृतुल्य दादाजी के उपदेश को आदरपूर्वक शिरोधार्य किया। दादाजी की मृत्यु के उपरान्त जागीर का समस्त प्रवध भी उन्हीं के हाथों में आगया। सन् १६४६ ई० से शिवाजी ने खुलेआम नेतृत्व करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने बहुत शीघ्र साम, दाम, दंड, भेद आदि की नीति का समयानुसार अवलम्बन लेते हुए चाकन, तोरण, सिंहगढ़, रामगढ़, पुरन्दर

और कल्याण के क़िलों पर अधिकार कर लिया। इस समय बीजापुर का बादशाह महल और कबरें बनवाने में लगा हुआ था और उसके सेनापति शाहजी कर्णाटक की लड़ाई में थे और इधर से उधर धावा कर रहे थे।

२१ वर्ष की अवस्था तक शिवाजी यह कार्य समाप्त कर चुके थे। अब वे आगामी युद्धों की तैयारियाँ वेग से करने लगे। एक ओर तो उन्होंने सेना-संगठन का कार्य आरम्भ किया और दूसरी तरफ अपने दूत चारों ओर अपने इलाके में भेज दिये। इसी समय शिवाजी को समाचार मिला कि 'कल्यान' के अध्यक्ष ने एक बहुत बड़ा खजाना बिहार की ओर भेजा है, तुरन्त दो सौ सवारों को लेकर उन्होंने खजाना लूट लिया। इस लूट की और कई नये किले लेने की खबर बीजापुर दरबार में साथ साथ पहुँची। बादशाह को बड़ी फिक्र हुई। उसने एक तरकीब की। बाजी घोरपड़े नामक अपने मराठा सरदार को गुप्त सूचना भेजी कि शाहजी को, किसी प्रकार बंदी बना लो। घोरपड़े ने शाहजी को अपने यहाँ भोजन का निमंत्रण देकर बुलाया और विश्वासघात करके उन्हें गिरफ्तार करवा दिया। शाहजी बंदी बनाकर बीजापुर लाये गये। बादशाह ने कहा—तुम्हारे ही इशारे से शिवाजी का साहस इस कदर बढ़ता जाता है—शाहजी ने शिवाजी को पत्र भी दिया पर वे न माने। इस पर बादशाह और भी कुपित हुआ। शाहजी ने बहुत कहा कि शिवाजी पर मेरा कोई वश नहीं है और न वह मेरी राय से कुछ करता है पर बादशाह को विश्वास न हुआ। शाहजी एक अँधेरे गढ़े में डाल दिये गये और एक छोटे सूराख को छोड़कर सब द्वार बंद कर दिये गये। साथ ही यह भी

घोषित कर दिया गया कि अगर शिवाजी शीघ्र ही अराजकता बंद न करेगा तो वह सूराख भी बंद कर दिया जायगा।

शिवाजी को बड़ी चिंता हुई। अंत में उन्हें एक युक्ति सूझ गई। उन्होंने मुगल सम्राट् शाहजहाँ से पत्रव्यवहार किया शाहजहाँ ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और बीजापुर नरेश को बाध्य किया कि वह शाहजी को मुक्त कर दे। शाहजी मुक्त हो गये। इसके बाद बीजापुर-नरेश आदिलशाह ने बाजी शामराजे नामक मनुष्य को शिवाजी की गिरफ्तारी के लिए गुप्त रूप से नियुक्त किया, पर कुछ न हुआ। बल्कि इसी बीच जावली के राजा चंद्रराव को मारकर उसका राज्य भी शिवाजी ने अपने अधिकार मे कर लिया। इस पर बीजापुर-नरेश ने अफजलखा नामक अपने सेनापति को एक बड़ी सेना के साथ भेजा। खान ने युक्तिपूर्वक अपने दूत द्वारा यह कहला भेजा कि अगर वे खान से मिलें तो उनके सारे अपराध क्षमा करा दिये जायँगे।—शिवाजी ने स्वीकार कर लिया, भेंट हुई। पर शिवाजी सतर्क थे, ज्यों ही उन्होंने खान की नीयत बदली देखी, त्यों ही 'बघनखा' नामक अस्त्र से उसका पेट चीर डाला। उधर मराठा सेना ने खान की सेना को काट डाला और भगा दिया।

अब शिवाजी का मोर्चा मुगलों से लगा क्योंकि अब मराठे मुगल राज्य में भी धावा करने लगे। औरंगजेब ने अपने मामा शायस्ताखाँ को भेजा। शायस्ताखाँ ने आते ही पूना पर अधिकार जमाया और वहीं के महलों में रहने लगा। एक दिन शिवाजी चुपचाप पहाड़ से निकले और एक नकली बरात बनाकर नगर में घुस पड़े। मराठे शायस्ताखाँ के महल में घुस पड़े, और मुगलों को काटने लगे। शायस्ताखाँ का लड़का

मारा गया। शायस्ताखाँ खुद बच गया पर भागते-भागते उसकी उँगलियाँ कट गईं। सन् १६६४ में शिवाजी ने सूरत नगर को लूटा और यूरोपीय कंपनियों से बहुत सा रुपया वसूल किया। शायस्ताखाँ के बाद औरंगजेब ने मिर्जा राजा जयसिंह और शाहजादा मुअज्जम को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। जयसिंह ने शिवाजी से मिलकर उनसे मुगल आधिपत्य स्वीकार कर लेने की संधि की। शिवाजी जयसिंह के साथ दिल्ली गये। दरबार में जब उन्हें पचहजारी मनसबदारों में खड़ा किया गया तो उनके क्रोध का वारापार न रहा। औरंगजेब से भी यह बात छिपी न रही। अतः उसने शिवाजी के डेरे पर पहरा लगवा दिया। शिवाजी नजरबन्द हो गये।

एक इतिहास-लेखक के कथनानुसार जब उन्हें यशवन्त-सिंह के पुत्र राजकुमार रामसिंह से पता लगा कि बादशाह उनके क़त्ल का निश्चय कर चुका है, तो उन्होंने बीमारी का बहाना किया। कुछ दिन बाद बीमारी दूर होने का समाचार प्रकाशित किया गया और उसी खुशी में मन्दिरों-मस्जिदों और अमीर उमरावों के यहाँ बड़े बड़े टोकरों में मिठाइयाँ भेजी जाने लगीं। मौका पाकर एक टोकरे में शिवाजी और एक में उन का पुत्र शम्भाजी छिपकर निकल गये। रातों-रात दिल्ली से मथुरा जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सिर मुँड़ा लिए और साधुओं वेश धारण करके प्रयाग, काशी और जगन्नाथपुरी होते हुए नौ महीने बाद सन् १६६६ में अपनी राजधानी में जा पहुँचे।

मुगलों से फिर लड़ाई छिड़ गई। बादशाह ने मिर्जा राजा जयसिंह को वापस बुला लिया और जोधपुर-नरेश यशवंतसिंह को भेजा। शिवाजी ने मुगलों से संधि करली। औरंगजेब ने

शिवाजी को राजा की उपाधि दी और शम्भाजी को पंचहज़ारी मनसबदार नियुक्त किया, पर यह संधि अस्थायी थी। सन् १६७० में पुनः लड़ाई आरम्भ हो गई। शिवाजी ने इस वार खानदेश से चौथ वसूल की और सूरत को दूसरी बार लूटा। सन् १६७४ में शिवाजी ने रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया और बड़े समारोह से अपना राज्याभिषेक किया। राजगद्दी पर बैठने के बाद शिवाजी ने अपने राज्य का और भी विस्तार किया,पर अपने राज्य को सुसंगठित न कर पाये। शीघ्र ही १६८० में ५३ वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हो गया।

शिवाजी के चरित्र के विषय में उनके शत्रु भी प्रशंसा करते हैं। वे एक तेजस्वी योद्धा और प्रतिभावान शासक थे। उन्होंने हिन्दुत्व की रक्षा में अपना जीवन लगा दिया। अपने जात्यभिमान की रक्षा के हेतु उन्होंने मुसलमानों से अनेक युद्ध किये और उनके गर्व को खर्व किया। वे साधु, महात्माओं और विद्वानों की क़द्र करते थे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि भूषण उनके दरबारी कवि थे। वे दीन-दुखियों पर दया करते थे। स्त्रियों का आदर करते थे। उनमें एक विचित्र आकर्षण था। इतिहासकार खाफीख़ाँ ने लिखा है''—शिवाजी की आज्ञा थी कि मसजिदों, स्त्रियों और कुरान का अनादर न किया जाय।''

इसमें संदेह नहीं कि शिवाजी एक महान पुरुष थे। उन्होंने हिंदू-जाति के सिर से कायरता का कलंक हटा दिया। उन्होंने जो कुछ करके दिखाया उस पर इतिहासकारों को आश्चर्य होता है, और सदा होता रहेगा।



कवि तुलसीदास

भारत में हिन्दू-राज्य का पतन होते-होते तीन सौ वर्ष लगे थे। यह काल युद्ध और संघर्ष का काल था। चौदहवीं शताब्दी के साथ-साथ इस काल का अन्त हुआ। इस लम्बे अरसे को साहित्यिक पर्यालोचन की दृष्टि से हम वीर-गाथा-काल कह सकते हैं, क्योंकि युद्ध और संग्राम के इस युग में किसी को दूसरा रस भाता ही कहाँ से ? चारणों की ओज-पूर्ण, वीर-रस-प्रवाहिनी वाणी ही सर्वत्र सुनाई पड़ती थी। तलवारों की झनझनाहट और ढालों की टक्कर के उपयुक्त यही वाणी थी भी।

चौदहवीं शताब्दी का अन्त होते-होते मुस्लिम-विजय पूर्ण होगई। यहाँ पर एक बात ध्यान देने की है, कि मुस्लिम विजेताओं ने राजनीतिक विजय पर सन्तोष नहीं किया। वे साथ-साथ धार्मिक विजय की बराबर चेष्टा करते रहे। उनकी धर्मान्धता ने विजित और निराश हिन्दू-जाति में प्रतिक्रियात्मक भावों की उत्पत्ति में सहायता प्रदान की। किन्तु कोई शक्ति-शाली अवलंब न पाने से उसकी हाय स्वभावतः दयामय परमेश्वर की शरण में जाने लगी, उन्हींको अपना एक-मात्र उद्धारकर्त्ता और प्रश्रयदाता मानने लगी। उसीका फल भक्ति-मार्ग के प्रतिपादक महात्माओं की वाणी है। इस भक्ति-काल का समय

१५वीं शताब्दी से १७वीं शताब्दी के अन्त तक है। इस काल में दो धारायें देखने में आती हैं, एक निर्गुण-धारा और दूसरी सगुण। निराशा के प्रथम युग में जो खेवा आया वह निर्गुण-रूप की उपासना में ही सन्तुष्ट रहा, क्योंकि उसे अत्याचारी शासकों का विरोध करने की परिस्थिति प्राप्त नहीं थी। उसने भक्ति के उसी अंश को ग्रहण किया जिसकी मुसलमानों के यहाँ भी जगह थी। कबीर इस धारा के मुख्य कवि हैं। दूसरी धारा के कवियों ने भगवान् का वह रूप लिया जो अत्याचारियों का दमन और दुष्टों का नाश कर सकता है। इनकी भक्ति का स्वरूप आशा, उत्साह और शक्ति से परिपूर्ण है। इस धारा के प्रमुख विधायकों में सूर और तुलसी मुख्य हैं। सूर ने भगवान् का हँसता-खेलता बालक्रीड़ा-सुलभ रूप दिखा कर जीवन में हँसी-खुशी का साम्राज्य स्थापित किया। तुलसी ने उनसे भी आगे बढ़कर भगवान् का जीवन-व्यापार-व्यापी, लोकमगलकारी रूप चित्रित किया जिससे हताश हिन्दू जाति मे पुनर्जीवन, आशा और शक्ति का अभूतपूर्व संचार हुआ।

गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत् १५४५ वि० में और मृत्यु १६८० वि० में हुई थी, ऐसा माना जाता है। उनका जन्मस्थान बाँदा जिला का राजापुर ग्राम विद्वानों ने निश्चित किया है। उनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। वे सरयूपारीण ब्राह्मण थे। कहते हैं कि उन्हें अपनी स्त्री से बड़ा प्रेम था और वे उसे एक क्षण के लिए भी छोड़ना पसन्द न करते थे। एक बार उनकी स्त्री बिना कहे नैहर चली गई। गोसाईं-जी से न रहा गया। ये भी वहीं जा पहुँचे, यह देख उनकी स्त्री बड़ी लज्जित हुई और बोली—

"लाज न लागत आपु को, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चरनमय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होनि न तौ भव-भीति॥"

पत्नी की इस एक उक्ति ने उन्हें सदा के लिए संसार से विरक्त कर दिया।

वैराग्य ले लेने पर गोसाईं जी ने मुख्य-मुख्य तीर्थों की यात्रा की। पीछे आकर कई वर्षों तक चित्रकूट में वास किया। यहीं उन्होंने रामगीतावली और कृष्णगीतावली की रचना की [संवत् १६२८]। इसके अनन्तर अयोध्या में रहकर १६३१ में उन्होंने रामचरितमानस रचना आरम्भ किया। अन्त में वे काशी में रहने लगे, और अंतकाल तक वहीं रहे।

इस प्रकार अपने लम्बे जीवन में गोस्वामी जी ने जीवन के समस्त क्षेत्रों का आनन्द और अनुभव प्राप्त किया। गोस्वामी जी की काव्यकला, उनकी अनन्य भक्ति, उनका प्रकृति निरीक्षण, उनका मनोविज्ञान, उनकी चरित्र-सृष्टि सभी कुछ अपूर्व हैं। इसका कारण यही है कि उनका निरीक्षण जीवनव्यापी था? यदि ऐसा न होता तो सब दृष्टियों से सांगोपांग रामचरितमानस जैसे ग्रंथ की रचना वे कैसे कर पाते' आचार्य केशवदास ने अनेक प्रकार के छन्द रचे हैं सही, पर छन्द-रचना के मर्म को केवल तुलसीदास ने ही समझा था। उन्होंने अपने समय में प्रचलित तमाम शैलियों पर रचना की है और मजा यह कि प्रत्येक शैली में अपनी विशेषता को कायम रक्खा है। ऐसी कोई शैली नहीं जिसमें उन्होंने परिष्कार न किया हो। जायसी की लेखनी जिस शैली को जन्म दे चुकी थी

कविता को हम उनकी भक्तिभावना से अलग करके देख भी नहीं सकते। भक्तिरूपी प्राण अलग करके उनकी कविता को देखना मुर्दे की चीर-फाड़ करने के समान होगा।

यों तो गोस्वामी के रचे हुए चौदह ग्रंथ प्रसिद्ध हैं और सभी अपनी अपनी विशेपता रखते हैं, पर रामचरित-मानस और विनय-पत्रिका उन सब में प्रधान हैं। रामचरित-मानस के संबध मे ऊपर कहा जा चुका है। विनय-पत्रिका राग-रागिनियों में लिखा हुआ विनय के पदों का संग्रह है। इसका विषय इसके नाम से ही प्रत्यक्ष है। गोसाईं जी ने राम के दरबार में जो प्रार्थना-पत्र भेजा है वही पदों में लिखा गया है। विद्वानों का मत है कि इस ग्रंथ में गोस्वामी जी का कवित्व पांडित्य, शब्द-भांडार, वाक्यपटुता, अर्थगौरव और उक्ति वैचित्र्य सभी कुछ पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है। किन्तु उनका यह अमूल्य ग्रंथ सर्वसाधारण की सम्पत्ति नहीं है, सर्वसाधारण की चीज बनने का श्रेय तो सबसे अधिक रामचरितमानस को ही प्राप्त है।

गोस्वामी जी केवल कवि ही नहीं थे, किन्तु सूक्ष्म विचारक और दूरदर्शी भी थे। हिन्दू समाज में उनसे पहले मतान्तरों की कमी नहीं थी। शैव वैष्णवों को और वैष्णव शैवों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। गोस्वामी जी ने अपने वाक्यों में बड़ी सुन्दरता से उनका समन्वय करा दिया। राम के द्वारा शिव की पूजा कराकर और शिव को राम का अनन्य स्नेही और भक्त बनाकर उन्होंने प्रचलित द्वेष-भाव के मूल में ऐसा कुठाराघात किया कि उसका अस्तित्व ही लोप हो गया। तमाम देवताओं के प्रति अपनी श्रद्धा की अञ्जलि चढ़ाते हुए भी अपने इष्टदेव

की आराधना और भक्ति की जा सकती है, उसमें कोई रुकावट नहीं पड़ती यह अपने उदाहरण द्वारा प्रत्यक्ष करके उन्होंने साधारण जनता में धार्मिक सहनशीलता का भाव भर दिया। गोस्वामी जी पर महिलाओं की निन्दा का दोपारोपण किया जाता है, पर यह ठीक नहीं है। उन्होंने केवल स्त्री के वासनात्मक रूप की निन्दा की है। जहाँ मातृत्व, पत्नीत्व और देवीत्व का प्रसंग आया है वहाँ उन्होंने उनकी शतमुख से प्रशसा की है। यदि स्त्री-जाति की निन्दा करनी ही उन्हें अभीष्ट होती तो सीता, सती, अनुसूया और सुमित्रा की अवतारणा वे कैसे कर पाते ?

अन्त में हम यह कहने को बाध्य होते हैं कि कविवर तुलसीदास प्रत्यक दृष्टि से, हिंदी-साहित्य के लिए और हिन्दू-जाति के लिए, ईश्वरीय देन थे। उन्हींकी कृपा का फल है कि हम आज हिंदू जाति को उसके वर्तमान रूप मे देख रहे हैं और उन्हींकी विभूति से आज हिंदी अपना मस्तक उठाकर भारत की अन्य भापाओं के सामने अपनी महिमा प्रदर्शित कर सकती है। किसी महाकवि ने अपनी भापा, अपनी जाति और अपने राष्ट्र को जो कुछ दिया है,तुलसीदास ने उससे कहीं अधिक हिन्दी भापा और हिन्दू जाति को दिया है। अपने इस महाकवि का ऋण हम कभी उतार नहीं सकते।

शंकराचार्य

दुनियाँ के प्रसिद्ध धर्मसंस्थापकों, महान उपदेष्टाओं और प्रकाण्ड विद्वानों में शंकराचार्य का भी एक विशेष स्थान है। उन्होंने अपने थोड़े से जीवनकाल में वास्तव में जो काम किया था, उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता। उन्होंने विरोधी और विक्षुब्ध वायुमण्डल में अपना कार्य आरम्भ किया था। तथा अपनी विद्वत्ता के बल पर, अपनी अमोघ तर्कशक्ति के द्वारा, एवं अपनी विलक्षण प्रतिपादनशैली के सहारे अभूतपूर्व सफलता के साथ उसे सम्पूर्ण किया था। उनकी वाणी में जादू था। उनकी विद्वत्ता में धाक थी। श्रोता सुनकर मन्त्र-मुग्ध होजाते थे अर्थात् उनमें महापुरुषों के सभी सुलक्षण मौजूद थे।

असम्भव बात पर जनता को विश्वास करा देना शक्य नहीं है। तथापि नीर-क्षीर विवेकी विद्वानों ने उनका विश्लेषण करके जो तथ्य स्थिर किये हैं उनके अनुसार कहा जा सकता है कि शङ्कराचार्य अपने बालपन मे ही बड़ी विलक्षण प्रतिभावाले थे। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि वे अपनी आठ साल की उमर में ही गहन शास्त्रीय विषयों को समझ एवं उन पर विचार कर सकते थे, तथा उनकी सांसारिक जीवन पर विशेष आस्था न थी। उनका ध्यान विरक्ति की ओर विशेष रहता था। इसी समय उनके पिता शिवगुरु का देहावसान होगया। पिता की मृत्यु ने उनकी विरक्ति की भावना को और भी अधिक बढ़ाया, तथा संसार की असारता की छाप उनके हृदय पर लगा दी।

एक सन्यासी के संसर्ग में आने पर उन्होंने उससे दीक्षा देने की प्रार्थना भी की थी, पर उस सन्यासी ने कह दिया था, कि जब तक तुम्हारी माता तुम्हें सन्यास लेने की अनुमति न दे दे तब तक तुम्हारा सन्यास सफल नहीं होगा। अतः वे उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे और अन्त में उन्होंने माता की अनुमति प्राप्त कर ही ली। माता की अन्तिम इच्छा को, कि सन्यासावस्था में भी वर्ष में एक बार वे उसे अवश्य दर्शन देंगे, उन्होंने स्वीकार कर लिया था।

गृहत्याग कर वे विशेष शास्त्रीय अध्ययन के लिए एक गुरुकुल मे पहुंचे। इस गुरुकुल के अधिष्ठाता श्रीगोविन्द-पाद नाम के एक ब्राह्मण थे। वे अपनी विद्वत्ता, कर्मनिष्ठा और त्याग के लिए समस्त दक्षिणभारत में प्रख्यात थे। उनका शिष्यत्व स्वीकार करके शंकर शास्त्रों का अध्ययन और योग

की शिक्षा प्राप्त करने लगे। उनके देदीप्यमान मुखमण्डल और उनकी बुद्धि की विलक्षण प्रखरता को देखकर उनके गुरु उन पर बड़े प्रसन्न थे। योगशास्त्र मे पारगत होजाने पर, उनकी मनोवृत्ति से परिचित, उनके गुरु गोविन्दपादाचार्य ने उन्हें सन्यास-धर्म की दीक्षा दी और वैदिकधर्म के पुनरुत्थान का कार्य करने की आज्ञा दी। गुरु की आज्ञा और आशीर्वाद पाकर वे आश्रम से निकले। निकलते ही देशभर में घोषणा कर दी कि एक मात्र सनातन वैदिकधर्म ही सार्वभौम धर्म है। यदि किसी को इसमे शका हो तो शङ्कर उसके निवारण करने अथवा इस विषय पर किसी से शास्त्रार्थ करने को तैयार है।

देश भर मे जगह जगह अनेक शास्त्रार्थ हुए। विपक्षियों ने उन्हें परास्त करने के अनेक उपाय किये, लेकिन उनकी विलक्षण प्रतिभा के सामने सबको मुँह की खानी पडी। उन्होंने कितने ही बौद्ध राजाओं को हिन्दू धर्म की दीक्षा दी। कितने बौद्ध विद्वानों के विचारों में क्रांति उपस्थित कर दी। उन्होंने भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम-घूम कर अपनी विद्वत्ता और सनातन-धर्म की ध्वजा फहराई। उनकी इसी यात्रा को शांकरदिग्विजय कहा जाता है। अपनी दिग्विजय को चिरस्थायी करने के लिए उन्होंने चारों दिशाओं में शृगेरीमठ, शारदामठ, गोवर्धमठ और जोशीमठ इन चार विद्यापीठों की स्थापना की। कहना नहीं होगा कि इन विद्यापीठों ने उनके कार्य को सफल बनाने में आगे चलकर बहुत कुछ योग प्रदान किया है।

उनके इस धर्मप्रचार के कार्य में विरोधियों ने बड़ी बाधाएँ

उपस्थित करने के प्रयत्न किये, किंतु उन्होंने उनकी रंच परवाह न की। अंत मे उन्होंने प्रसिद्ध विद्वान मण्डनमिश्र और उसकी विदुषी पत्नी सरस्वती देवी को शास्त्रार्थ में पराजित किया। उन्हें अपने धर्म मे सम्मिलित करके अपने शेष कार्य को पूरा कराने में उनसे बड़ी सहायता ली।

अब तक हम देखते आरहे हैं कि शङ्कराचार्य केवल बड़े भारी धर्मोपदेशक अथवा धार्मिक विजेता मात्र थे। किंतु नहीं, वे बड़े गम्भीर विचारक और सफल लेखक भी थे। उन्होंने अनेक ग्रथों की रचना की है। उनके विशाल पांडित्य के आगे आज भी विद्वान नतमस्तक होते है। प्रस्थानत्रयी—गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र—पर उनके भाष्य आज भी पंडितों में प्रमाणिक माने जाते हैं। उनकी धाराप्रवाह भाषा और अकाट्य प्रतिपादन शैली के तो सभी क़ायल हैं।

उन्होंने अपने समस्त ग्रंथों में अपना 'अद्वैत सिद्धान्त' प्रतिपादित किया है। यदि और किसी मार्ग पर उन्होंने जोर दिया है तो वह 'निवृत्ति मार्ग' है। उन्होंने यही दिखाने का प्रयास किया है कि क्या उपनिषद्, क्या ब्रह्मसूत्र, दोनों ही में अद्वैत तत्व के साथ 'सन्यास निष्ठा' भी मौजूद है। उनके गीता-भाष्य में भी यही मत प्रतिपादित है। अद्वैत सिद्धान्त का सार यह है—सृष्टि में दिखाई पड़ने वाली समस्त वस्तुएं वस्तुतः एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। सब में एक ही शुद्ध और नित्य ब्रह्म की सत्ता व्याप्त है। यह जो एकता में अनेकता अथवा सृष्टि में भिन्नता भासित होती है वह उसी की माया के कारण है वास्तव में आत्मा ही ब्रह्म है। इस आत्मा और परमात्मा की एकता का अनुभव किए विना मोक्ष नहीं मिलता।

इस अनुभव को प्राप्त कराने का सब से सरल मार्ग निवृत्तिमार्ग अर्थात् सन्यास है।

इस प्रकार इस महान कार्य को उन्होंने पूर्ण तो कर दिया, किंतु काश्मीर यात्रा से लौटते समय उन्हें भगंदर रोग होगया। इसी रोग से अंत मे उनकी केवल बत्तीस वर्ष की अवस्था मे जीवन-लीला समाप्त होगई। इस थोड़ी सी अवस्था मे उन्होंने जो कार्य करके दिखाया था, उसके उदाहरण इतिहास मे बहुत कम मिलते हैं। सिकन्दर महान की महाविजय कुछ इसी तरह की थी, पर वह पशुबल पर अवलम्बित थी, और वह शङ्कराचार्य की आध्यात्मिक विजय की भाँति चिरस्थायी भी नहीं हो सकी। सिकन्दर की मृत्यु के उपरांत ही उसका साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया, जब कि शकर की विजय हिन्दू-धर्म के साथ अमर है।



कुछ आख्यानात्मक निबन्धों के खाके

आगे विद्यार्थियों की सुविधा के लिए कुछ वर्णनात्मक निबन्धों के खाके दिये जाते है, जिनकी सहायता से विद्यार्थी स्वयं निबन्ध लिखने का अच्छा अभ्यास कर सकते हैं

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

वीरसिंह जिला मेदिनीपुर में जन्म। पिता ठाकुरदास वन्द्योपाध्याय, दरिद्र किन्तु कुलीन ब्राह्मण। कलकत्ता मे जीविकोपार्जन।

विद्याध्ययन—प्रथम गाँव की पाठशाला में, ९ वर्ष की आयु में संस्कृत-कालेज कलकत्ता में प्रवेश। परिश्रमी और कुशाग्रबुद्धि सम्पन्न। सब श्रेणियों में सर्वप्रथम उत्तीर्ण। लगभग ग्यारह वर्ष तक अध्ययन। तदुपरान्त अध्यापन। बीस वर्ष की अवस्था मे "विद्यासागर" उपाधि की प्राप्ति।

फोर्टविलियम कालेज में मुख्य पंडित के पद पर। क्रमश कालेज के सहकारी अध्यापक, फिर अध्यक्ष। सस्कृत ग्रंथों का लेखन। शिक्षाविभाग मे सबइन्सपेक्टर। तीन वर्ष बाद सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र। शेष जीवनभर देश और समाजसुधार।

विधवा-विवाह के समर्थक और प्रचारक। बाल-विवाह, अनमेल विवाह और बहुविवाह के विरोधी। बंगसाहित्य मे नवजीवन फूँकनेवाले। होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रेमी और उसके प्रतिष्ठापक। दया के अवतार। बड़े ज़बरदस्त सुधारक। स्वभाव की सरलता सराहनीय।

सन् १९८१ में ७१ वर्ष की आयु में शरीरान्त। मृत्यु के उपरान्त प्रभाव। परिस्थितियों को वश में करनेवाले। सामान्य कुल में जन्म लेकर देशविख्यात। देशविख्यात पुरुषों में अग्रगण्य।

कालिदास

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबारी कवि। समय चौथी शताब्दी का अन्त और पाँचवीं शताब्दी का आरम्भ। वर्ण ब्राह्मण। वंश गोत्र आदि का पूरा निश्चय नहीं।

कहते हैं कि बाल्यकाल में एकदम मूढ थे। कुछ विद्वान पंडितों के षडयन्त्र के कारण विद्यावती नामक विदुषी से विवाह। पत्नी द्वारा तिरस्कृत और बहिष्कृत। लज्जा और ग्लानि से विद्याध्ययन में संलग्न। विद्याप्राप्ति के बाद घर लौटना। बुद्धि और प्रतिभा का प्रकाश। रघुवंश, मेघदूत, कुमारसंभव काव्यों की रचना। अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशी और मालविकाग्निमित्र नाटकों का प्रणयन। कवियों की श्रेणी में सर्वप्रथम।

सरल, मधुर और सीधी भाषा। उपमा की उत्कृष्टता के लिए विख्यात। चरित्र-चित्रण में पंडित। हृदयहारी और स्वाभाविक वर्णन करने में पटु। मनोभावों का चित्र खींचने में एक ही। भारतीय साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि।

संसार के श्रेष्ठ कवियों में उनका स्थान। देशी-विदेशी कवियों, विद्वानों और कलाकारों का उनके संबंध में मत। उनके ग्रंथों का देश-देशान्तरों में आदर। अन्य विश्व-कवियों के साथ उनकी तुलना।

शकुन्तला

राजर्षि विश्वामित्र और मेनका अप्सरा की कन्या। माता द्वारा मालिनी नदी के तट पर त्यागी हुई। कण्वऋषि की उस पर दृष्टि पड़ना। शकुन्त पक्षियों द्वारा रक्षित होने से शकुन्तला नाम। कण्व का उसे धर्म-पुत्री करके आश्रम में रखना और पालन पोषण करना। वल्कल-धारिणी ऋषि-कन्याओं के साथ उसका रहना और कन्द मूल खाना।

राजा दुष्यन्त का आश्रम में आगमन। शकुन्तला का दर्शन,और उसके रूप पर मुग्ध होना। शकुन्तला का राजा दुष्यन्त के प्रति प्रेम। कण्व की अनुपस्थिति में दोनों का गांधर्व विधि से विवाह। दुष्यन्त का राजधानी को प्रस्थान। शकुन्तला की प्रतीक्षा कि कब उसे राजधानी से कोई लेने आवे। स्मृतिचिह्न-स्वरूप दुष्यन्त की अँगूठी लेकर रहना। दुखी शकुन्तला, दुर्वासा का आगमन। शकुन्तला का उनके स्वागत में तत्परता न दिखा पाना। ऋषि का क्रोध, और शाप, कि "तू जिस के ध्यान में बेसुध होकर एक महर्षि का अनादर कर रही है वह मिलने पर तुझे भूल जायगा।"

कण्व का आगमन। यह जानना कि शकुन्तला गर्भवती है। शकुन्तला को पति के यहाँ जाने की स्वीकृति देना। पिता के शिष्यों के साथ शकुन्तला का आश्रम त्याग। विदा का मर्मस्पर्शी दृश्य। मार्ग में एक सरोवर में अँगूठी का खो जाना। दुष्यन्त के सामने शकुन्तला। राजा का उसे भूल जाना और पत्नीरूप से स्वीकार न करना। ऋषि कुमारों का शकुन्तला को छोड़कर प्रस्थान। शकुन्तला का अन्तर्धान होना। मछुए से अँगूठी प्राप्त कर राजा को शकुन्तला की सुध आना। राजा का अनुताप करना। स्वर्ग से लौटते समय कश्यप ऋषि के आश्रम में राजा का शकुन्तला के गर्भजात पुत्र भरत को देखना और प्रसन्न होना। दुष्यन्त शकुन्तला का पुनर्मिलन। राजा का शकुन्तला को स्वीकार करना।

अहिल्याबाई

मालवा प्रदेश के पाथरडी गाँव में सन् १७२५ में जन्म। पिता का नाम आनन्दराव। बड़े सज्जन और ईश्वरभक्त।

बचपन में शिक्षा प्राप्ति। बड़ी चतुर और समझदार। नौ वर्ष की अवस्था में मल्हारराव होल्कर का उन्हें देखना और बालिका के गुणों पर मुग्ध होना। अपने लड़के के लिए अहिल्या की याचना। खण्डेराव और अहिल्या का विवाह।

ससुराल में सेवा से सास-ससुर को संतुष्ट करना। सबलोग प्रसन्न। घर के कामकाज अपने हाथ से करना। एक पुत्र और कन्या का प्रसव। बीसवर्ष की अवस्था में विधवा होना। पुत्र का भी देहावसान। राजकाज का भार उन्हीं के ऊपर। न्याय और प्रजा-पालन में दुःख भूल जाना। भीलों के उपद्रवों को शान्त करना। रघुनाथराव को लज्जित करके रणक्षेत्र से विमुख करना। राज्य में सुधार और प्रजाहित के कार्य। मुक्तहस्त होकर दानधर्म करना। तीर्थों में मन्दिर और धर्मशाला निर्माण कराना। सदावर्त लगाना। कुँए खुदवाना।

स्वभाव की सरलता और धैर्य। धर्मपरायणता और सहृदयता। चरित्र की निर्मलता और न्यायपरायणता। रानी नहीं देवी। वैधव्य, और पुत्रशोक को सहना। पुत्री को अपनी आँखों से सती होते देखना, आँसू न गिराना। भारत के लिए गौरव। स्त्री जाति की भूषण। प्रात स्मरणीया। सन् १७९५ में स्वर्गवास। अबतक सबकी ज़बानों पर उनका नाम।

सुकरात

यूनान देश में ई० पू० ४६९ में जन्म। पिता संगतराश और माता दाई का काम करती थी। सादी और गरीबी की जीवनचर्या में लालन-पालन।

विद्याध्ययन—सब प्रकार की शिक्षा। रेखागणित और ज्योतिष में विशेष प्रवृत्ति दिखाना। विद्यार्जन के उपरान्त सेना में प्रवेश। कई युद्धों में पराक्रम प्रदर्शन। परिश्रम और कष्ट-सहिष्णुता का अपूर्व परिचय। सैनिक जीवन के उपरान्त धर्म-तत्व, नीति, विज्ञान, दर्शन और राजनीति का उपदेश देना। तर्क की अद्भुत प्रणाली।

नास्तिकता का आरोप। युवकों को पथभ्रष्ट करने का लांछन।

महाराष्ट्र जीवन में जागृति। संत महात्माओं के स्वदेश, स्वधर्म और स्वजाति-रक्षण के उपदेश। शासन-संचालन में मराठा-जाति की दक्षता। शिवाजी का उत्कर्ष। शिवाजी और जातीयता। विधर्मी और विदेशी सत्ता से शिवाजी का संघर्ष। जातीयता की भावना का देश में स्वागत। शिवाजी और मराठा जाति का अभ्युदय। शिवाजी के बाद की दशा। जातीयता का ह्रास। परस्पर फूट और वैमनस्य। मराठा साम्राज्य का पतन। वर्तमान अवस्था और जातीयता की भावना।

बाढ़

अतिवृष्टि के फलस्वरूप नदियों का जल भयंकररूप से बढ़ जाना। किनारों को लाँघकर जलराशि का इधर-उधर के प्रदेश में फैल जाना।

धन-जन की हानि। गाँवों और बस्तियों का जलमग्न हो जाना, खेतों का डूब जाना। पशुओं और मनुष्यों का बह जाना। १९२४ की बाढ़ का प्रलयंकर दृश्य। भयंकर और प्रखर प्रवाह में किश्तियों तक का न ठहर सकना। मीलों तक जल ही जल। बहे जाते हुए वृक्ष, पशु, जंगली जानवर, विषैले सर्प, सुअर आदि। डाक आदि का आना-जाना बन्द। हवाई जहाज से उस बाढ़ का दृश्य। बाढ़पीड़ित लोगों की दशा। स्त्री की गोद का बालक बाढ़ की भेंट। अनाथ बालक के माता-पिता दोनों जलमग्न। एक विधवा का सर्वस्व नष्ट। एक चालीस पचास आदमियों के सम्मिलित परिवार में से केवल एक बूढ़ा शेष। बाढ़ दैवी-प्रकोप। मनुष्य का उस पर वश नहीं।

बाढ़ के उपयोगी पहलू पर विचार। सृष्टि का कोई व्यापार केवल सदोष या केवल निर्दोष नहीं। बाढ़ से उपजाऊ मिट्टी का मैदान में बिछ जाना।

उपसंहार। दोष ही अधिक व्यापक।

अग्निकांड

जीवन के लिए आग आवश्यक। पर अग्निकाड का रूप धारण करने पर उसका प्रलयंकर विकराल रूप।

प्राय. असावधानी के कारण अग्निकांड होते हैं। बस्तियों में अग्निकांड। मकानों, दूकानों और कारखानों में आग से लाखों की संपत्ति स्वाहा। जीवन की हानि। जंगलों में अग्निदाह। सूखे पेड़ो की डालियों की रगड से अग्नि प्रज्वलन। वायु के साथ उसका फैलना। सघन सुन्दर वनों का स्मशानों में परिणत हो जाना। वन्य-जीवों का भयभीत होना, बहुतों का भस्म हो जाना।

बड़े बड़े नगरों में नगरसभाओं (Municipal Boards) की ओर से प्रबंध, पानी बुझाने की कल आदि। वनों में आग की बाड देकर आग को फैलने से रोकना आदि।

किसी बड़े अग्निकाड का वर्णन। स्काउटो और स्वयंसेवकों की अग्नि कांड में सेवा।

विश्वविद्यालय

वह शिक्षण-संस्था जो उच्च शिक्षा वितरण करती हो या उच्च शिक्षा प्राप्ति के प्रमाणपत्र देती हो।

प्राचीन इतिहास। भारत के प्राचीन विश्वविद्यालय—तक्षशिला, नालन्दा आदि। अन्यान्य सभ्य देशों के विश्वविद्यालय। एथेन्स की एकेडेमी आदि।

विश्वविद्यालयों का विकास और उनका सुव्यवस्थित रूप। उत्तरोत्तर वृद्धि। दुनियाँ के आधुनिक विश्वविद्यालय, आक्सफोर्ड, कैंब्रिज, पेरिस आदि के विश्वविद्यालय। भारत के विश्वविद्यालय। बंबई, कलकत्ता, मद्रास प्रयाग और लाहौर के विश्वविद्यालय। हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी। मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़। प्राइवेट विश्वविद्यालय गुरुकुलकांगड़ी, विश्वभारती आदि। यू० पी० विश्वविद्यालयों का प्रान्त।

विश्वविद्यालयों की अपनी-अपनी विशेषताएँ। कोई शिक्षा प्रधान कोई परीक्षा प्रधान। किसी में विज्ञान, किसी में साहित्य और किसी में व्यापार की शिक्षा का विशेष प्रबंध।

कार्यकर्ता और प्रबंध—सिंडिकेट कार्यवाही करता है। चान्सलर और रजिस्ट्रार कार्यकर्ता।

लाभ—उच्च शिक्षा की उन्नति। सभ्यता और संस्कृति का अभ्युदय। किन्तु शिल्प की उन्नति की ओर रुचि की कमी।

विश्वविद्यालयों की वर्तमान प्रणाली में सुधार। जीवन की प्रत्येक आवश्यकता को शिक्षा का अंग बनाना। नवीन ढंग के विश्वविद्यालय स्थापित करने की आवश्यकता।



व्याख्यात्मक निबन्ध

मितव्ययिता

प्रयोजन से अधिक खर्च न होने देने का नाम मितव्ययिता है। इससे विपरीत, बेहिसाब और बेसमझे बूझे, खर्च करने को अपव्यय कहते हैं। आदमी बुद्धिमान प्राणी है। वह प्रत्येक कार्य की उपयोगिता और उसके मूल्य का अंदाजा लगा सकता है। वह प्रत्येक कार्य के विषय में यह सोच सकता है, कि इसका उपयोग हमारे जीवन में कितना है? जब वह यह सोच लेगा तो सहज ही मितव्ययी होने का प्रयास करेगा। वह उस कार्य में उसी हद तक खर्च करेगा, जहाँ तक हम उसे प्रयोजनीय कह सकते हैं। इसके विरुद्ध यदि कार्य की उपयोगिता के विषय में कोई उदासीन रहे; उसके मूल्य का अंदाजा लगाने में अपनी बुद्धि का जरा भी उपयोग न करे तो उसका बेहिसाब खर्च करना स्वाभाविक होगा। ऐसी दशा में वह मितव्ययी कैसे हो सकेगा?

यदि मनुष्य का सारी उमर परिश्रम कर सकना सम्भव होता, तो मितव्ययिता की आवश्यकता ही न थी। जितना वह आज पैदा करता उतना ही खर्च कर देता। कल के लिए कुछ बचाकर क्यों रख छोड़ने का प्रयत्न करता? व्यर्थ के

अनेक झञ्झटों से मुक्ति मिल जाती। न इस कदर चिंताएँ होतीं न इतना आडम्बर होता। किंतु वस्तुस्थिति कुछ और ही है। किसी में सारी उमर एक सी शक्ति नहीं रहती। युवावस्था में जो बात होती है वह आधी उमर बीतने पर नहीं रहती और अर्धवयस्कता की समता बुढ़ापा नहीं कर सकता। तात्पर्य यही है कि युवावस्था का उत्साह, परिश्रमशीलता, संलग्नता और शक्ति उत्तरोत्तर क्षीणता को ही प्राप्त होती जाती है। पौरुष और सामर्थ्य का ह्रास हो जाता है। एक बूढा जर्जर मनुष्य उसी तरह विवश और पराधीन हो जाता है जिस प्रकार एक बालक। मानव-शरीर के इस स्वाभाविक परिणाम को सुखमय बनाने के लिए मितव्ययिता परमावश्यक है। उस समय युवावास्था के सचित धन की बड़ी जरूरत पड़ती है। वही मनुष्य का सहारा होता है। उसके अभाव में उसका जीवन दूसरों की कृपा पर अवलंबित हो जाता है, जिससे अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं।

सृष्टि के आदि काल में जब मनुष्य सभ्य और सुसंस्कृत नहीं था, जगली जानवरों की तरह वनों में रहता और फल-फूल तथा आखेट आदि पर गुजर करता था, उस समय मितव्ययिता के बिना काम चल सकता था पर आजकल तो ईश्वरीय सृष्टि के अतर्गत मनुष्य की स्वरचित एक सृष्टि है। उसको इस रूप म लाने मे स्वयं मनुष्य कुछ का कुछ हो गया है। उसका बहुत कुछ विकास हो गया है। उस समय आखेट आदि के द्वारा उसका काम चल जाता था, पर आज वे विध्वंसक कार्य उसे संतोष नहीं दे सकते। अब उसके अन्दर विधायक-वृत्ति विकसित हो गई है। वह सृजन का महत्त्व

स्वीकार करने लगा है। आज अगर कोई मनुस्मृति को उससे छीन ले तो वह उसका सबसे बड़ा शत्रु होगा। मतलब यह है कि उसमें दूर-अन्देशी, विचारशीलता तथा कर्तव्यबुद्धि का भी विकास हो गया है। अब केवल अपने लिए ही वह नहीं जीता है। उसके आगे उसके बच्चे हैं, परिवार है, जाति है, समाज है और देश है। यदि वह अब भी अपने कार्यों की उपयोगिता पर ध्यान नहीं देगा, उनके मूल्य का ठीक अन्दाज नहीं लगाएगा, बिना विचारे खर्च करता जायगा, तो वह अपनी बड़ी भारी जिम्मेदारी को पूरा नहीं करेगा। वह उत्तरावस्था में स्वयं तो कष्ट उठाएगा ही, अपने आश्रितों को भी दुख के समुद्र में छोड़ जायगा। इसलिए वर्तमान मनुष्य के लिए मितव्ययता की आवश्यकता अनिवार्य है। इसके बिना उसका जीवन सफल होना कठिन है।

लोग प्रश्न करते हैं कि मितव्ययिता स्वीकार करने से दानपुण्य आदि सद्वृत्तियों में रुकावट पड़ती है। किंतु जो ऐसा कहते हैं वे मितव्ययिता के अशुद्ध अर्थ लगाते हैं। मितव्ययिता कभी सद्वृत्तियों की तृप्ति में बाधक नहीं होती। वह तो यही बताती है कि तुम्हारा दान-पुण्य, दान-पुण्य ही हो। वह तुम्हारे धर्म की वृद्धि करे। ऐसा न हो कि तुम जिसे धर्म समझ रहे हो वह पाप के नाम से तुम्हारे खाते में जमा हो रहा हो। अर्थात् मितव्ययिता बताती है कि तुम उसी को दान दो जो उसका वास्तविक पात्र हो। ऐसा न हो कि तुम्हारा पैसा चरस की चिलमों का धुआँ बनकर उड़ जाय या शराब की बोतलों के साथ बह जाय। वह यह भी बताती है कि उस वास्तविक पात्र को भी उतना ही दो जितने से उसकी

आवश्यकता की पूर्ति होती हो। अधिक देने से उसमें प्रमाद और मुफ्तखोरी की आदत बढ़कर अन्त में बुराई में परिणत हो जायगी। यह सब कहकर मितव्ययिता यह भी कहती है, कि जरा अपनी हैसियत की तरफ भी ध्यान रखो। ऐसा न हो, तुम देने की धुन में सुदामा को तीनों लोक दे डालो। तीनों लोक दान करके फिर खुद कहाँ रहोगे? इसी विश्व में रहोगे तो फिर पाप करोगे। इस वास्ते अपनी हैसियत से बाहर दान देना भी अहितकर है। दाता जब इस तरह अपने आपको मिटा देगा तो आगे चलकर दीनों की रक्षा कौन करेगा? इसके लिए अगर आप मितव्ययिता को दोष दें तो भले ही दें। वैसे दोष देने लायक तो वह है नहीं।

कुछ लोग मितव्ययिता और कृपणता को एक ही समझते हैं। अगर किसी को चद्रमा काला और आकाश सफेद दीखे तो न तो चद्रमा काला और न आकाश सफेद माना जायगा। माना जायगा यही, कि देखनेवाले की दृष्टि में कुछ दोष है। इसी तरह कृपणता और मितव्ययिता को एक समझनेवालों की बुद्धि भी अवश्य कुछ अस्वस्थ है। ऊपर मितव्ययिता की व्याख्या हम देख चुके हैं। अब कृपणता की भी व्याख्या देख लीजिये। तब हम सहज ही उनकी समानता-असमानता का निर्णय कर सकेंगे। प्रयोजन से कम खर्च करने को कृपणता कहते हैं अर्थात् जहाँ चार रुपये खर्च करने की आवश्यकता हो, वहाँ केवल दो या एक ही रुपया खर्च करना। कृपणता काम की अच्छाई-बुराई, उसकी उपयोगिता-अनुपयोगिता की ओर से सर्वथा उदासीन होती है। उसे इस बात से प्रयोजन नहीं है कि काम कितने महत्त्व का है। उसे तो

स्वावलम्बन

संसार में मनुष्य की उन्नति और अभ्युदय के लिए अनेक धर्म-व्यवस्थायें, कानून, कायदे और अच्छी से अच्छी संस्थाएँ मौजूद हैं। प्रायः प्रत्येक मनुष्य थोड़ा या बहुत अपनी लाभ-हानि का विचार भी रखता है, किन्तु इससे वह उन्नत होकर अभ्युदय के शिखर पर नहीं चढ़ सकता। यदि वास्तव में उसे कुछ उन्नति करनी है तो उसे स्वयं प्रयत्नशील होना चाहिए। केवल मार्ग का ज्ञान कर लेने से ही निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचना नहीं हो सकता, उसके लिए कमर कसकर चल पड़ना होगा, अपनी कर्मशूरता का परिचय देना होगा। यदि संस्थाएँ और कानून-कायदे हमें अभ्युदय की प्राप्ति करा भी दें तो उसे हम पसन्द न करेंगे। वैसी अवस्था में मनुष्य मनुष्य न रह जायगा, उसकी कर्तृत्वशक्ति का सर्वथा अभाव हो जायगा। वह पगु और निष्क्रिय हो जायगा। विफलता में सफलता की आकांक्षा और सफलता में विशुद्ध आनन्द—यही तो मानवजीवन की स्पृहणीय विभूतियाँ हैं।

सहायता बिना इस दुनियाँ में चल ही नहीं सकता। पारस्पारिक सहयोग और सहायता से अपने आपको अलग करके स्वावलंबी बनने की इच्छावाला यदि कुछ करने में समर्थ भी होगा तो दुनियॉ की ऑखों में उसका कुछ भी महत्त्व न होगा। दुनियॉ के चिरकालीन ज्ञान की विरासत की उपेक्षा वह कर ही नहीं सकता।

जीवन मे जिन जिन महापुरुषों ने सफलता पाई है, मनुष्य समाज में पूजित हुए हैं, उनके कामों पर अन्तर्दृष्टि डालने से पता चलता है कि वे स्वावलम्बन का महत्त्व समझते थे। उसी को उन्होंने अपने जीवन का मुख्य आधार बनाया था। उन्हें निश्चय था कि स्वावलम्बी पुरुष ही उद्योगशील और उत्साही होता है। उदाहरण के लिए हम महाराज शिवाजी को ले सकते हैं। उन्होंने उस समय भारतवर्ष मे हिन्दू-राज्य कायम किया जबकि मुस्लिम शासन और शौर्य अपनी सर्वोच्च उन्नति पर पहुँच चुका था। जब तमाम राजपूत राजा अपनी स्वाधीनता मुग़ल सम्राट के हाथों बधक रख चुके थे, जातीय गौरव और प्रताप सब धूल में मिल चुका था तब उस महापुरुष ने अपना जयघोष आरम्भ किया। उसने अपनी दृढ़ता, उद्योगशीलता और उत्साह के द्वारा वह कार्य कर दिखाया, जिसने फिर से मृतप्राय हिन्दू-जाति में जीवनरस की धारा बहा दी। उसी समय के दूसरे महापुरुषों में गुरु गोविंदसिंह का नाम बड़े आदरपूर्वक लिया जा सकता है। उन्होंने बिखरे हुए मोतियों को बटोरकर एक प्रबल सिक्ख जाति को जन्म दिया, जिसने आगे चलकर भारत के इतिहास को बनाया और बिगाड़ा।

कि भ्रातृप्रेम और त्याग का मूल्य हम समझते हैं। साथ ही हम यह भी सूचित करना चाहते हैं कि हमारी श्रद्धाञ्जलि भ्रातृप्रेम और त्याग जैसे मूल्यवान आचरण के ऊपर ही समर्पित हो सकती है। प्रकारान्तर से हम उस भ्रातृप्रेम और त्याग के लिए आदरभाव प्रकाशित करके भरत के मन में यह भाव प्रतिष्ठित कर देते हैं कि वे भविष्य में इससे उच्चतर आदर्श हमारे सामने रक्खें। हम उन्हें ऐसे आचरण के लिए दृढ़ता और प्रोत्साहन देते हैं। उनके मन के ऊहापोह को दूर कर देते हैं। इसी प्रकार यदि हम अपनी परोपकारवृत्ति की कीमत स्वतः समझते हैं, तो उस परोपकार से तमाम दुनियाँ की उपेक्षा भी हमें विरत नहीं कर सकती। उसमें हमारी संलग्नता कभी शिथिल न होगी। दुनियाँ के यश अथवा निन्दा के लिए ठहरकर हम अपने समय का दुरुपयोग न करेंगे और यदि हमारा अनुमान ठीक है तो अन्त में वह समय भी स्वतः आएगा, जब दुनियाँ भी हमारे कार्य के महत्त्व को स्वीकार करेगी। लेकिन उस समय हमारी परोपकारवृत्ति आत्मप्रतिष्ठा के पुरस्कार से पुरस्कृत हो चुकी होगी। हमें दुनियाँ से जो कुछ प्राप्त होगा वह अतिरिक्त पुरस्कार होगा। इस तरह यह तो ज्ञात हो ही गया कि आत्मप्रतिष्ठा अवाञ्छनीय अथवा हानिकर नहीं है। बल्कि वह हमारी मनोवृत्तियों के विकास में सहायक होती है।

कह सकते हैं कि आत्मप्रतिष्ठा में 'हम चुना दीगरे नेस्त' अर्थात् अहंकार का भाव रहता है। मनुष्य स्वयं जो कुछ करता है उसी को ठीक और सब कुछ समझता है। दुनियाँ के ज्ञान की ओर से आँखे मूँद लेता है। लेकिन बात वस्तुतः

चादर पर कलंक का धब्बा बन जाता है। भविष्य का उच्च-उन्नत जीवन वर्तमान की आत्मप्रतिष्ठा का ही कार्य होता है। आत्मप्रतिष्ठा का अंकुर ही पुष्पित और पल्लवित होकर महान पुरुषों के जीवन को आच्छादित किए हुए है। यदि उनमें इसका जन्म न होता, तो बड़े बड़े महत्व के कार्य कर सकने की प्रेरणा और क्षमता उनमें न आती। इसके अतिरिक्त जो आत्मप्रतिष्ठा का मूल्य नहीं जानते। उनके लिए सब धान बाईस पंसेरी हैं। अच्छा और बुरा उनके लिए बराबर है। ऐसी अवस्था में वे अपने प्रत्येक कार्य के लिए गर्व करें, इसमें आश्चर्य ही क्या? पर उनका यह गर्व, घमंड और अहंकार ही होगा और परिणाम होगा पतन।

कहा भी जाता है, कि जो अपनी इज्जत अपने आप नहीं करता, उसकी दुनियाँ में कोई इज्जत नहीं करता। लेकिन अपनी इज्जत करने के लिए हमें इज्जत बढ़ानेवाले काम ही करने पड़ेंगे। इज्जत पर धब्बा लगानेवाले काम करके, अपने को बड़ा समझनेवाला भी, दुनियाँ से इज्जत की आशा नहीं रख सकता। और ऐसी हालत में अपनी इज्जत अपने आप करना भी, अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने की तरह निन्दनीय है। इसलिए आत्मप्रतिष्ठा वही है जो मनुष्य के प्रतिष्ठित आचरण के लिए स्वयं उसके अन्तःकरण में जन्म ले, और वह सदा अनुकरणीय, आवश्यक और मंगलमयी है। उससे किसी प्रकार के कुफल की आशंका नहीं है।

पंडितवर जानसन ने बिलकुल ठीक कहा है कि "बातें पृथ्वी की कन्याएँ हैं और कार्य स्वर्ग के पुत्र।" लेकिन उद्योग वह आजमूदा रसायन है जो नव-नव हाव-भावमयी मनोहारिणी उन पृथ्वी की कन्याओं को दिव्य कान्तिमान स्वर्ग-पुत्रों में बदल देता है। यदि आपको विश्वास न हो तो आप किसी उद्योगी वीर के साथ साथ चलकर देख लीजिए। बाबर और हुमायूँ, हैनीबल और सीजर, चन्द्रगुप्त और सिकन्दर, नेलसन और नैपोलियन तथा प्रताप और शिवाजी ने सहस्रों ऐसी कन्याओं को पुत्रों में परिणत किया है। ये लोग इस उद्योग-रूपी महारसायन का प्रयोग जानते थे। यदि ऐसा न होता तो सभी लोग शिवाजी और राणा प्रताप न बन जाते। केवल बातों को लेकर बैठे रहना और उन्हीं के साथ क्रीड़ा करना, अर्थात् हवा में किले बनाना एक बात है उन्हीं बातों को उद्योग-पूर्वक कर डालना बिलकुल दूसरी बात है।

एक समय था जब हिन्दुस्तान धन और विद्या के कारण विदेशियों के लिए आश्चर्य का आगार था। मेगास्थिनीज और फाहियान, अलबेरूनी और इब्नबतूता तथा इत्सिंग और ह्वेनसांग के लेखों को देखिए। भारत का वह महिमामय युग हमें एक स्वप्न जान पड़ता है। आज के दुर्दशाग्रस्त और अध.पतित भारत के साथ उस युग का कोई सादृश्य नहीं। आज तो अन्न और वस्त्र के लिए हाहाकार मचा है। छुआछूत का भूत मुँह फैलाकर हमें खाय जा रहा है। अज्ञान और कुरीतियाँ इस विंश शताब्दी के वैज्ञानिक आलोक से डरकर, विश्व के समस्त देशों को छोड़-छोड़कर, भारत में शरण ले रही हैं। हिमालय और गंगा की वही पवित्र-भूमि आज फूट और मतभेद की गंदगी